जैन सिद्धान्त भास्कर

THE JAINA ANTIQUARY

VOL 46 | DECEMBER 1993 | No. 1-2

श्री देवकुमार जैन ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट,
आरा (बिहार)

Ac. Gunratnasuri MS
Jin Gun Aradhak Trust

सोलहकारण भावनाओं की पूजा

रूपान्तरकार—श्री सुबोधकुमार जैन

परम प्रमोद रूप,
इन्द्र पद धारण कर,
धन्य भाग अपने आज पाता हूँ।
तीर्थंकर पद के लिए,
कारणभूत सोलह कारण–
भावनाओं की मैं पूजा रचाता हूँ ।।
[ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध आदि सोलहकारणानि अत्र ममहृदये अवतर, अवतर संवौषट्, अत्र ममहृदये तिष्ठ-तिष्ठ, ठः ठः, अत्र ममहृदये सन्निकट भवत, भवत वषट्]

सोने की झारो से,
बहते हुए जल को,
निर्मल धाराओं को झर-झर झराता हूँ।
तीर्थंकर पद···· ····
[ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध आदि सोलहकारणानि जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा]

कपूर के खण्ड से,
सुवासित सुचन्दन को,
श्री जो के चरणों के सन्मुख बहाता हूँ।
तीर्थंकर पद···· ····
[ॐ ह्रीं········संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा]

सब हो को प्रिय, ऐसे
विमल, अटूटे, सुन्दर,
निर्मल सुगन्धित शुभ्र अक्षत सजाता हूँ।
तीर्थंकर पद···· ····
[ॐ ह्रीं···· ····अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा]

भौंरों से गुञ्जित
पुष्प, केतकी, कमलिनो, चम्पा
लेकर करों में, मैं गीत गाता हूँ।
तीर्थंकर पद···· ····
[ॐ ह्रीं········पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा]

[पृष्ठ ९१, ९२, ९३, ९४ पर]

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जैन सिद्धान्त भास्कर

जैनपुरातत्त्व सम्बन्धी षाण्मासिक पत्र

वि० सं० २०५० वीर निर्वाण सं० २५२०

दिसम्बर १९९३

भाग-४६ किरण १-२

सम्पादक मण्डल

डॉ० राजाराम जैन
डॉ० गोकुलचन्द्र जैन
डॉ० आदित्य प्रचण्डिया
डॉ० शशिकान्त

सम्पादक

डॉ० कस्तूरचन्द्र कासलीवाल
डॉ० ऋषभचन्द्र फौजदार

आ.श्री. कैलाससागर सूरि ज्ञान मंदिर
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र कोबा

प्रकाशक

अजयकुमार जैन, मंत्री

श्री देवकुमार जैन ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट

श्री जैन सिद्धान्त भवन, आरा (बिहार)

वार्षिक शुल्क भारत में–५०/- विदेश में–७५/-

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

विषय-सूची

पृष्ठ

१. चौधरी बाजार (कटक) : के जिनालयस्थ हस्तलिखित ग्रन्थों का परिचय
—श्री भँवरलाल नाहटा १

२. ऋषभनाथ और उनकी मूर्ति परम्परा
—डॉ० रमेशचन्द्र शर्मा ८

३. जैन संस्कृति के विकास में दक्षिण की नारियों का योगदान
—डॉ० ऋषभचन्द्र फौजदार १५

४. वाराणसी का ऐतिहासिक भित्तिलेख
—डॉ० कस्तूरचन्द्र जैन 'सुमन' २१

५. सरस्वती की प्राचीन मूर्तियाँ
—श्री गणेशप्रसाद जैन २७

६. स्वयंभू-काव्य में छन्द : एक विश्लेषण
—डॉ० आदित्य प्रचण्डिया 'दीति' ३५

७. जैन संस्कृत वाङ्मय में महामान्य वस्तुपाल
—डॉ० केशवप्रसाद गुप्त ४

८. भारतेन्दु का जैन काव्य
—डॉ० महेन्द्रसागर प्रचंडिया ४९

९. ऐतिहासिक जैन डायरेक्टरी बिहार सन् १९१४
—श्री सुबोध कुमार जैन ५२

१०. संस्कृत काव्य के विकास में बीसवीं शताब्दी के जैन मनीषियों का योगदान
—डॉ० नरेन्द्र सिंह राजपूत

११ वृषभाष्टक
—डॉ० ऋषभचन्द्र 'फौजदार' ७४

१२. पं० नलिन विलोचन शर्मा : संस्मरण
—श्री सुबोध कुमार जैन ७६

१३. स्वामी सत्यभक्त जी, वर्धा का पत्र ७८

१४. समीक्षा—मुनि केशराज ऋषिकृत जैन रामायण पर प्राप्त समीक्षाएँ ८०

१५. पुस्तक समीक्षा ८२

१६. जल छान कर पीना परम धर्म है ८४

१७. जय बाहुबली जय महामस्तकाभिषेक, १९९३ .... ८५

१८. भवन में १९ शास्त्र भण्डारों की पुरानी सूची ८९

१९. स्व० राजर्षि बाबू देवकुमार जी दिगम्बर जैन महासभा का संस्मरण
८५ वर्ष पुराना ९०

२०. सोलहकारण भावनाओं की पूजा ९१

मुद्रक : बाबूलाल जैन फागुल्ल, महावीर प्रेस, भेलुपुर, वाराणसी–१०

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

चौधरी बाजार (कटक) के जिनालयस्थ हस्तलिखित ग्रन्थों का परिचय

—श्री भँवरलाल नाहटा

पैंतीस वर्ष पूर्व सं० २०१४ में योगिराज गुरुदेव श्री सहजानन्दघन जी महाराज का चातुर्मास खण्डगिरि में था, तब चार-पाँच बार वहाँ जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। तभी कटक मन्दिरादि दर्शन करने गया। वहाँ दो दिगम्बर जैन मन्दिर हैं एक तो प्राचीन है और दूसरा राजस्थान से आये हुए चौधरी महोदय का चौधरी बाजार में है। दिगम्बर जैन मन्दिरों में स्वाध्यायप्रवृत्ति के कारण कुछ ग्रंथों का संग्रह अवश्य ही रहता है। मैंने थोड़े समय में चौधरी बाजार के मन्दिर के कुछ ग्रंथ देखकर आवश्यक नोट अपनी डायरी में किये थे जिन्हें यहाँ उद्धृत कर प्रकाशित किया जा रहा है, आशा है शोधार्थियों के लिए उपयोगी होगा।

१. धर्मसार-पत्र ६२

आदि—वीर जिनेसर पन्नगदेव, इन्द्र नरेन्द्र करै सतसेव।
अरु वंदौं हौं गए जिनराय, सुमरत जाके पाप नसाय ॥ १ ॥
वर्त्तमान जे जिनवर ईश, कर जोरैं पुनि नाऊं सीस।
जे जिनेन्द्र भवि मुनि कहै, पूजो ते मैं सुरमुनि महै ॥ २ ॥
जिनवानी प्रनऊं धरि भाव, भव जल पार उतारउ नाव।
पुनि वंदौ गौतम गनराय, धर्म भेदजिन दयौ बताय ॥ ३ ॥
आचार्य कुन्दकुन्द मुनि भए, पूजौ तामैसुर मुनि भये।
अरुजे जिनवर भए अपार, प्रनऊं जिनभव ते भवतार ॥ ४ ॥
सेऊं सकलकीर्त्ति के पाय, सकल पुरान कहे समुझाय।
जिन सतगुरु कहि मंगल लहै, धर्मसार सुभ ग्रंथहि कहै ॥ ५ ॥
ज्ञानवंत जे मति अति जान, ते पुनि ग्रंथन सकै बखान।
मैं निलज्ज मूरिख अति सही, कह न सकौं जैसी गुरु कही ॥ ६ ॥

अन्त—नमस्कार करि बहुसुख पाई, चले नगर पुन अपने राई।
कुटुम्ब सहित पुन पहुँचे गेह, जिनवर नांव जपो अति नेह ॥ ७७ ॥
जैसी गनधर वानी कही, सो धर्म मुनि वैसी सही।
नेमचंद सिद्धांत बखानो, धर्म भेद पुन तिनतें जानों ॥ ७८ ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जिनसेना भये गुन की खान, धर्मभेद सब कहो बखान।
तिन ते जतिवर भये अनेक, राखी बहुत धरम की टेक ॥ ७९ ॥
सूरज बिन दीपक भये जैसे, गनधर बिन मुनि जानौ तैसे।
जसकीरति भट्टारक संत, धर्म उपदेश दयो गुणवंत ॥ ८० ॥
ललितकीर्त्ति भविजन सुखदाई, जिनवर नाम जपे हित लाई।
धर्मकीर्त्ति भये धर्म निधान, पदमकीर्त्ति मुनि करे बखान ॥ ८१ ॥
तिनके सकलकीर्त्ति मुनि राजे, तपजप संयम शील विराजे।
ललितकीर्त्ति मुनि पूरब कहे, तिनके ब्रह्म स्तुति पुनि भए ॥ ८२ ॥
तप आचार धर्म शुभ रीति, जिनवर सौं राखे निजप्रीति।
तिनके शिष्य भए परवीन, मिथ्यामति लीनी सबकी छीन ॥ ८३ ॥
पंडित कहे जो गंगादास, व्रत तप विद्या शील निवास।
पर उपकार हेत अति कीयौ, ज्ञान दान बहुत्तन दीयो ॥ ८४ ॥
तिनके शिष्य शिरोमनि जान, धर्मसार पुन कहो बखान।
करमक्षिपक कारण सो भई, तब यह धर्मभेद विधि दई ॥ ८५ ॥
जो या पढै गुने चित लाई, समकित प्रगटै ताको आई।
व्रत आचार जाने शुभ रूप, मुनि जाने श्रृंगार स्वरूप ॥ ८६ ॥
जिन महिमा जाते सुखदाई, पुनि सो होई मुकतिपुर राई।
अक्षर मात हीन तुक होई, केरि सुधारो सज्जन सोई ॥ ८७ ॥
जैसी विधि ग्रन्थन में जानी, तैसी मैं कही पुनः बखानी।
जे नर विषयी धर्म न जाने, धर्मसार विधि ते नहि माने ॥ ८८ ॥
जे नर धर्मशील मन लावे, धर्मसार सुनि के सुख पावे।
सिंह जैन नगर उत्तिम शुभ नाम, शांतिनाथ जिन सोहै धाम ॥ ८९ ॥
प्रतिमा अनेक जिनवर की भाषै, दर्शन देखत पाप विनाशै।
श्रावक बसै धर्म के लीन, अपने मारग चलै प्रवीन ॥ ९० ॥
कुटुम्ब सहित मिलि हेतु जकियौ, तहाँ ग्रन्थ यहु पूरन लियौ।
छत्रपति सोहै सुलतान, औरंग पातसाही जु बखान ॥ ९१ ॥
देवीसिंह राजा तह चंड, वैरिन सौं लीनौ बहुदण्ड।
प्रजा पुत्र सम जाने धीर, राजन मैं सोहे वरवीर ॥ ९२ ॥
तिनके राज यह ग्रन्थ बनायौ, कहे शिरोमनि बहु सुख पायौ।
संवत सत्रह सो बत्तीस, वैसाख मास उज्जल पुन दीस ॥ ९३ ॥
तृतीया तिथि है शनौ समेत, भवजन को मङ्गल सुखहेती।
ग्रन्थ सात सौ तेसठ जान, दोहा चौपई कही बखान ॥ ९४ ॥

इति श्री धर्मसार ग्रन्थे श्री सकलकीर्त्ति उपदेशात् पं० शिरोमणिदास विरचिते सप्तम संधी ॥७॥ सं० १८९१ शाके १७२५ मीति मार्गशीर्ष कृष्णो तीन भौम वासरे। लिखिकृतं

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

मिश्र रामलाल। विखायतं कवरजी सरबसुखजी स्वपठनार्थम् तथा परोपकारार्थम्। यादृशं पुस्तकं दृष्ट्वा, तादृशं लिखितं मया। यदि शुद्धमशुद्धं वा, मम दोषो न दीयोगे ।।१।। शुभं भवतु ।। पुस्तक लिख्यो नगर कटकमध्ये। लेखक वासी जयनगर को वांचै विचारै ज्यानै आशीर्वाद ।। शुभमस्तु ।। कल्याणमस्तु ।। श्रीवीतरागजी स्वाहाय ।।

२. चौबीस ठाणा चर्चा छंद गाथा

अन्त—संस्कृत गाथा कठिन, अर्थ न समझ्यो जाय।
ता कारण गोविन्द कवि, भाषा रची बनाय ।। ५३ ।।
जो याको सीखे सुने, अर्थ विचारै सोय।
सभा मांहि आदर लहै, मूरख कहै न कोय ।। ५४ ।।
शब्द छंद अक्षर अर्थ, यामै घटि बढ़ि होय।
बुधजन सबै सुधार जो, माफ करीजो मोहि ।। ५५ ।।
अठारासै उपर गनो, इक्यासी पुनि और।
फागुन सुदि दशमी सुतिथि, शशिवार सिरमौर ।। ५६ ।।

इति श्री चौबीस ठाणा की चर्चा सम्पूर्ण

३. निर्वाणकाण्ड भाषा गा० २२

अन्त—संवत सतरा सै इकताल, आश्विन सुदि दशमी सुविशाल।
भइया वंदन करो त्रिकाल, जय निर्वाणकाण्ड गुणमाल ।। २२ ।।

४. चौबीस दण्डक भाषा, गाथा ५१ दौलतराम

५. नेमिचन्द्रिका छंद १८२

आदि—आदि चरन हिरदै धरो, अजित चरन सिर नाई।
संभव सुरत लगाइ कै, अभिनंदन मन लाइ ।। १ ।।
इनहि आदि चौबीस जिन, वंदौं मन वच काइ।
गणधर गुरहू मनाइ के, बहुरि शारदा माइ ।। २ ।।
चौपाई—देऊ सुमतिमोहि शारदा माई, नेमिचंद्रिका कहौं बनाई।
आज्ञा मानि गुरन की लेऊ, भूले मारग पाउ न देऊ ।। ३ ।।
अन्तः—नमिकुंवर मुगते गए, सुर्ग सोर है नार।
हीन अधिक अच्छर जहां, पंडित लेहु सुधार ।। १७८ ।।
चौपई—पंडित लीनो सबै बनाय, मैं मतहीन न वरनी जाय।
नही चतुर्थ बैठक भई, बाल बुद्धि एती वरनई ।। १७९ ।।
नेमचंद्रिका पढ़ै जो कोई, ताको सिद्ध महासुख होई।
संवदु सत्रासै हो गयो, ता ऊपरि इकसट धरे दयो ।। १८० ।।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

भादौ सुकल पछ सुभ होय, दुतिया सोमवार तिथ सोय।
ता दिन चन्द्रिका पूरन भई, बुद्धिहीन भाषा वरनई ॥ १८१ ॥
पढ़ै सुनै भविजन जो कोई, मन वंछित-फल पावै सोई।
नारि पुरिष सबही मन लाइ, तिनकौ श्रीजिन नेम सहाय ॥ १८२ ॥

दोहरा—पंडित चतुर सुजान तुम, जिन लावो मति थोर।
कछु अधिक कछुहीन होइ, सो तुम लीजो जोर ॥ १८३ ॥
नेम चन्द्रिका जो पढ़ै, तिनकौ पुन्न प्रकाश।
मारग जानै धरम कौ, जिनवर भक्त सो आस ॥ १८४ ॥

इति संपूर्णं। पठनारथ के कारने श्री चंपोबाई जोग।
दया धर्म संजुक्त है, ताको बहु संजोग ॥ १ ॥

६. ज्येष्ठ जिनवर पूजा (व्रत कथा) छंद ९७

आदि—नाभितनुज मरुदेवी उर, ऋषभनाथ सो देव।
आदि चतुर्थमकाल की, जेष्ठ जिनेन्द्र सो सेव ॥ १ ॥

अंत—श्रेणिक नृप सुनि व्रत तनौ, फल हरखौ मन लाइ।
श्रुतसागर पुनि तास की, कथा कही हित लाइ ॥ ८७ ॥
ताको पुनि भाषा रची, भद्रक सावहू धीर।
सुरेन्द्रकीर्ति मुनिराय जी, मिथ्यामति दल धीर ॥ ८८ ॥
संवद अठारा सैंतीस सम, जेठ मास सुखकार।
सुकल पछ के अंतदिन, शुक्र तनौ शुभवार ॥ ८९ ॥
भट्टारक आमेर के, मूल संघ में सार।
बलात्कार जन मूल सो, कुन्दकुन्द गुर तार ॥ ९० ॥
ताकी पट्टावलि विषै, सुरेन्द्रकीर्ति मुनिराय।
या भाषा हित सौ रची, बाल पठन के काज ॥ ९१ ॥
कटक नगर है अति भलौ, देश उड़ीसा मांहि।
तामै मंजु चौधरी, ल्हसै सेठ शुभ ठांहि ॥ ९२ ॥
परवारन शुभन्यात में, सोहै सो सिरताज।
सो जीवो जग में सदा, ताकी आख्यां लाज ॥ ९३ ॥
सुरूपवंत गुणवान अति, सील विलछन सार।
पढवे में प्रवीन अति, ताकी है वर नार ॥ ९४ ॥
नाम नगीना नग जिसी, वरनी है सुकमार।
ताकी विनती पायके, भाषा रची हितधार ॥ ९५ ॥
जो याको वांचै सही, पढ़ै सुनै नरनारि।
व्रत कौ जे पुनि आदरै, ते उतरै भवपार ॥ ९६ ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

लला बजाज ने यह लिखी, श्री चंपोबाई काज।
निश्चैं जिनव्रत धारियौ, मिलहै सुक्ख समाज ॥ ९७ ॥
संवद अंक परकर्म धरे, पुनिरस पद जुगम सो साल।
जेठ बदि एकादसी जा पूरी लिखी रसाल ॥ ९८ ॥

इति ज्येष्ठ जिनेन्द्र कथा सम्पूर्ण ॥ लिखतं कटक मध्ये ॥

७. रविवार कथा गा० १६३

आदि—पंच परमगुरु सुमिर के, गनधर कौ सिरुनाइ।
तसु प्रसाद रवि व्रतकथा, भाषा विविध बनाई ॥ १ ॥
अन्त—करिजु घिठाइ रचौ पुरान, वोछी बुद्धि मैं कियो वखान।
हीन अधिक अछिर जो होइ, बहुर सम्हारौ गुनियर लोइ ॥ १५९ ॥
अगूवारै कियौ वखान, कौरी जननी तिहु जन गर थान।
गगहि गोत मल्ल कौ पूत, भयो कवि जिनभक्ति संजूत ॥ १६० ॥
करम खय कारण यह मति भई, तब यह करम कथा अरथई।
मनधर भाव सुनै जो कोई, सो नर सुरग देवता होई ॥ १६१ ॥
दोहरा—वामानंदन पार्श्व जिन, निसदिन सुमरों तोहि।
इंद्र तनौ सुख भोगवै, संकट परै न कोई ॥ १६२ ॥
पार्श्वनाथ जप जह चलै, जो पुजवे सब काज।
मन वंछित फल पाव ही, श्री मुकति वधूको राज ॥ १६३ ॥

इ····इनकरि लिखी, लला ने यह जान। यह रविवार कथा····लखि, पढ़हु सुनहु भविमान ॥१॥
संवत अट्ठाइस ए (कसठ ?) की है साल। जेठ सुदि एकादशी लिखी, कटकमध्य सो····ल ॥२॥
पठनारथ चंपोबाई कौ, जैन धरम रतलीन।····रम संजुक्त है, वृत कर है परवीन ॥३॥
त्रक दोहा मोथैभ····श्री भगवंत सहाई। पुस्तक विनय सों राखियो, अविनै····दुखदाई ॥

इति रविवार कथा संपूर्ण। शुभ भवति मंगलम् ॥

नोट—एक गुटके में पासा केवली, करम छत्तीसी, ध्यान बत्तीसी, अध्यात्म बत्तीसी, शिव पच्चीसी, ज्ञान पचीसी (बनारसीदास) तथा अध्यात्म फागु गा० १७, ६२ वर्गणा बनारसी गा० २८ है।

८. मुकुट सप्तमी व्रतकथा गा० ४६ ब्रह्म ज्ञानसागर

आदि—पार्श्व जिनेन्द्र नमो नमो वरवीर। सरसती गौतम गुण गभीर।
सकल साधु पद प्रणमौ सार। प्रगटे पुण्य तणो भण्डार ॥ १ ॥
मुकट सप्तमी कथा विधान। भाखौं आगम के परमान।
जंबूद्वीप भरत वर जान। कुरु जंगल शुभ देश बखान ॥ २ ॥
अन्त—कर्म हनी ने शिवपद लहै। ब्रह्म ज्ञानसागर हम कहै।
मुकट सप्तमी व्रत फल सार संखेपे मैं कह्यो विचार ॥ ४६ ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

१. आदि पुराण भाषा पत्र ६१० जयपुर कछवाहा माधवसिंह के राज्यकाल में दौलत राम द्वारा सं० १९५२ में भाषा में लिखित।

२. हरिवंश पुराण—कर्त्ता ब्रह्म जिनदास पत्र संख्या २०४ सं० १८७३ तपायति कृपाराम लि०।

३. शीलकथा—कर्त्ता भारामल, सं० १८२५ में दोहा ५४६ (गुटका नं० ७८)

४. हणवंत अंजणारास—कर्त्ता ब्रह्म जिनदास पृ० १०९, जंबुद्वीप प्रमाण, तीर्थंकर बल संख्या, षट अनागत, मृत्यु महोत्सव, विवेक पच्चीसी (पृ० ११८-१३८) व्रतसार, २४ दण्डक, धर्मोपदेश श्लो० ४१ बल वर्णन श्लोक, नरक दुख, स्वर्ग सुख।

५. पद्म पुराण भाषा वचनिका ३३६ से ६३६ रविषेणाचार्यकृत मूल, जयपुर में माधवसिंह राज्य सं० १८२३ माघ सुदी ९ शनि, आनन्दसुत ने भाषा की। सं० १८४० में प्रधान गंगाधर लिखित। लखनऊ में।

६. भक्तामर कथा—लालविनोदी कृत सं० १७४७ श्रा० सु० २ अग्रवाल गर्गगोत्री मुण्डन, पारस, वणहमल पुत्र विनोदीलाल लिखित सं० १८४५ पत्र १९७।

७. धर्म परीक्षा भाषा मनोहर खण्डेलवाल कृत सं० १९५३ फा० सु० ८ भृगु० शिवदयाल दूबे, मु० फर्रुखाबाद मुहल्ला खतोरोन निवासी ने लिखी।

देश दादुरो पर्वत तली, तहाँ धामपुर शोभा भली।
चिहुँ दिशि शोभित वाडी बाग, करै कोकिला पंचम राग ॥ ६४ ॥
कूप बावरी सुख पोखरी, दीसे निर्मल पानी भरी।
मध्ये कमलिनी कौ विगास, मधुकर आय लैंहीं तसु वास ॥ ६५ ॥
तहाँ बसे धनपति बहुलोग, पान फूल को कीजे भोग।
तहाँ सरावग नीके सुखी, कर्म उदय कोही हो है दुखी ॥ ६६ ॥
वित्त सारु शुभ दान कराय, उगम वार जिन थानक जाय।
तिन मधि बासु जेठू साह, खरचे द्रव्य लेही धन लाह ॥ ६७ ॥
दुर्जन को ही धीर न धरे, धरम नम सोही निधि—रे।
घणी बात को करे बढ़ाय, नगर सेठ है मन उचकाय ॥ ६८ ॥
जेठमल सुत विधिचन्द दाता दीनदयाल।
सजन भगता गुण उदधि, दुर्जन छाती साल ॥ ६९ ॥
कुल धन जोबन रूप मद, अवर काणि मधि ताहि।
एते नवि मद करे, बड़ो तमासो आहि ॥ ७० ॥
सब भाई भी है भले, अपने अपने काज।
मति कोईं मानो बुरो, सत्य कहत हों राज ॥ ७१ ॥

सवैया इकतीसा—

वाणारसी सेठ पृथ्वीसागर प्रसिद्ध कोटि धन को धनी ताकै पापा उदय आयो को।
अपनी बराबरी को करि नाना भाँति सेती, दे करि बड़ाई निज थानक पढ़ायो थो ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सदन सों निकस अयोध्या गमन कीनो, अयोध्या के सेठ बहु उद्यम करायो थो।
ऐसे हम आसु साह्य राखे बिज बांह देके, कहै मनोहर हम पुण्य जोगे पायो थो ॥७२॥

दोहा—सो तो पहुँचो सुभगगति, चारो सुभग बधाय।
विविधभव सुख भोगवे, धर्मध्यान चित लाय ॥ ७३ ॥
हीरामणि उपदेश तें, भयो शास्त्र शुभ सार।
दुष्ट लोग को मति हसो, हृदय धरि न विकार ॥ ७४ ॥

सवैया इकतीसा—

रावन साल वाहन आगरिको बुधिवंत, हृदय सरल तिन ज्ञान रस पीयो है।
जगदत्त मिश्र गौड़ हिंसार के वासी शुभ विद्याबल जुत तिनसार जस लीयो है ॥
वेगराज पंडित विराहमणी नगरी मांही जोतिग को पाढि सरस्वती वर दीयो है।
इतने सहाई भये दुहाई जिनराज जू की तव मैं विचारधरि भाषा बंध कीयो है ॥७५॥

दोहा—दया समुद्र ब्रह्मदान भयो दूसरो नाम।
निर्लोभन को सरल है, दयाधरम शुभ भाव ॥ ७६ ॥
तो भी हम प्रेरक भये, दिन में बारम्बार।
तब हम यह भाषा करी, लघु बुद्धि छाड़ि विचार ॥ ७७ ॥

छप्पय—नगर धामपुर मांही करि भाषा बुद्धि सारू।
धर्म परीक्षा मिन अरथ व्यंजन धरि बाहरू ॥
न कछु कीरति न कछु आरति धन वंछन।
यथा सकति मति पंडित रची पद-पद रस संचन ॥
पढ़े सुने उपजे सुबुधि हुवे कल्याण शुभसुख धरण।
मन रहसि मनोहर कहे सकल संघ मंगल करण ॥ ७८ ॥

८. गुटका १ में—वर्त्तमान चौबीसी पूजा, पंचकल्याणक पूजा, कर्मदहन पूजा विधान भाषा, पंचपरमेष्ठी पूजा। सं० १८७३ सावन सुदि २ तपायति कपूरविजय मारवाड़वासी लिखित।

९. गुटका १ विविध ५० कृतियों का संग्रह सं० १८९७ सावण सुदि १० सन् १२४७ लिपिकृतं खड्गराव बसती कटक। लिखायितम् हीरालाल मोदी–चौधरी बाजार।

१०. हरिवंशपुराण पृ० ५३१ जिनसेनाचार्यकृत।

११. पुण्याश्रव कथाकोष भाषा—सं० १७७० भादवा बदि ५ पत्र ३२३ सं० १८३९ चैत सुदी ५ ग्राम कुम्हेड़ी मध्ये तपोचंद्रापुरी बुन्देलखण्ड में लिखित प्रधान अचल सिंह।

१२. पुण्याश्रव कथाकोष भाषा पत्र २३२ संवत् १८४४ चैत सुदि ३ लिखित। कटक नगरे उत्कल देश में पुण्याधिकारी भवानीदास चौधरी ने लिखायो। लिखितं गोपाल पंडितनामे महाराष्ट्र ब्राह्मण निज सेवक दादूजी की आज्ञानुसार समाप्त किया। ग्रंथाग्रंथ १००००।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

ऋषभनाथ और उनकी मूर्ति परम्परा

—डॉ० रमेशचन्द्र शर्मा

भगवान् महावीर का महान् अवदान होने से वह जैनधर्म के प्रतीक बन गये हैं और जनमानस में धर्म संस्थापक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। यह ऐसी ही धारणा है जैसे श्रीराम व श्री कृष्ण हिन्दू या सनातन धर्म के आदि पुरुष अथवा प्रवर्तक न होते हुए भी लोक में हिन्दू संस्कृति के सर्वमान्य प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। भगवान् महावीर की स्थिति पाँचवीं शती ई० पू० में मानी जाती है किन्तु उनके पूर्ववर्ती पार्श्वनाथ जो आठवीं शती ई० पू० में थे, को भी ऐतिहासिक महापुरुष स्वीकार किया गया है और अधिकांशतः उनके ही सिद्धान्तों को वर्धमान महावीर ने भी प्रचारित किया। अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अनासक्ति—इन चार महत्त्वपूर्ण सूत्रों को आधार मान कर पार्श्वनाथ जी ने धर्म प्रचार किया। महावीर जी ने इनमें ब्रह्मचर्य अथवा संयम और जोड़ दिया। दूसरी ओर साहित्यिक सन्दर्भ यह भी प्रमाणित करते हैं कि धर्म प्रवर्तन पार्श्वनाथ से पहले हो चुका था और इसका मूल श्रेय श्री ऋषभनाथ को है जिन्हें आदिनाथ या प्रथम जिन अथवा तीर्थङ्कर माना गया। इसका उल्लेख न केवल जैन साहित्य करता है अपितु जैनेतर साहित्य से भी इसकी पुष्टि होती है। भागवत में उनका स्मरण इस प्रकार किया गया है :

नित्यानुभूतनिजलाभनिवृत्ततृष्णः
श्रेयस्य तद्रचनयाचिरसुप्तबुद्धेः।
लोकस्य यः करुणयाभयमात्मलोक-
माख्यान्नमो भगवते ऋषभाय तस्मै ॥

भा० ५-६-१९

ऋषभनाथ ने अपने पुत्रों को जो उपदेश दिया उसे भी भागवत्कार ने जिस प्रकार उद्धृत किया है उसमें जैनधर्म की नीतियाँ समाहित हो गई हैं। इसमें दैहिक सुख से ऊपर उठकर तपस्या द्वारा निरन्तर सुख की प्राप्ति को वरेण्य बताया है। कर्मकाण्ड की निन्दा की गई है। हृदय की ग्रंथि को निर्मूल करने से ही संसार बन्धन से मुक्ति मानी है और सभी प्राणियों को आत्मवत् मानने पर बल दिया है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भगवान् महावीर के निर्वाण के शताब्दियों पश्चात् लिखे साहित्य में अतिशय ख्याति अर्जित करने पर भी प्रवर्तक के रूप में वर्धमान जी को नहीं अपितु ऋषभनाथ जी को ही स्वीकार किया गया। साथ ही जब सामंजस्य और समभाव की लहर दौड़ी तो भी हिन्दू धर्म के अवतार के रूप में ऋषभदेव ही प्रतिष्ठित हुए। इससे भी सिद्ध होता है कि ऋषभनाथ महावीर जी से पूर्ववर्ती तो थे ही अपितु संस्थापक के रूप में दिव्यत्व प्राप्त कर चुके थे।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

लौकिक साहित्य के अतिरिक्त वैदिक साहित्य में भी ऋषभ या वृषभ का वर्णन एक राजा की भाँति हुआ है जो प्रजा को सम्पन्न रखता है।

आचर्षणिप्रा वृषभो जनानां राजा कृष्टीनां पुरूहूत इन्द्रः।
स्तुतः श्रवस्यन्नव सोममद्रिग् युक्तवः हरी वृषणा याह्यर्वाङ ।।

ऋ०, १-२३-१७७

त्वं रथं प्रमरो योधमृष्वभावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम्।
त्वं तुग्रं वेतसवे स चाहन्त्वं तुजि गृणन्तमिद्र तूतोः ।।

ऋ० ४-६-२६-४

विष्णु पुराण के अनुसार नाभि और मेरू देवी के पुत्र के रूप में ऋषभ का जन्म हुआ। उनके सौ पुत्र थे जिनमें वीर भरत को राज्य सौंप कर उन्होंने वन में जाकर कठोर तप किया।

(वि० पु० २-१-२७-३२)

भागवत में स्पष्ट किया है कि सुन्दर कान्तिमान शरीर एवं ऐश्वर्य, बल, पराक्रम आदि गुणों से सम्पन्न होने के कारण नाभि ने अपने पुत्र का नाम ऋषभ अर्थात् श्रेष्ठ रखा।

भा० ५-३-२० तथा ४-२

वायु पुराण के अनुसार ऋषभ के पुत्र भरत के नाम पर ही इस देश का नाम भारत पड़ा :—

नाभिस्त्वजनयत् पुत्रं मरुदेव्यां महाद्युतिः।
ऋषभं पार्थिवश्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम् ।।
ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्र शताग्रजः।
सोऽभिषिच्याथ भरतः पुत्रं प्राव्राज्यमास्थितः ।।
हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत्।
तस्मात्तद् भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विधुर्बुधाः ।।

वायुपुराण ३१-५०५२

इसी की पुष्टि नृसिंह पुराण में हुई है :

'ऋषभाद्भरतो भरतेन चिरकालं धर्मेण पालितत्वादिदं भारतं वर्षमभूत्'

नृसिंह पुराण ३०-७

इन साहित्यिक सन्दर्भों से यह स्पष्ट है कि जैनेतर अनुश्रुतियाँ भी ऋषभनाथ जी को एक प्रमुख धर्म प्रवर्तक, महापुरुष अथवा दिव्य पुरुष के रूप में स्वीकार करती हैं। वैदिक साहित्य के उद्धरणों से प्रतिपादित होता है कि मानव सभ्यता के आदि युग में ही वह सुप्रसिद्ध थे। जैन मान्यताओं के अनुसार काल चक्र अति सुख, सुख, सुखदुःख, दुःख दुःख और अति दुःख इन छः भागों में विभक्त है। इन्हें चक्र के अरे या तीलियां माना जाना चाहिए : काल-चक्र के चलने पर इनकी यथा समय आवृत्ति होती रहती है। सुख से दुःख की ओर जाना

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अवसर्पिणी या अवनति काल माना जाता है और दुःख से सुख की ओर जाने को उत्सर्पिणी या उन्नति काल कहते हैं। इन दोनों अवसर्पिणियों में करोड़ों वर्षों का अन्तर है और प्रत्येक अवसर्पिणी एवं उत्सर्पिणी-काल के 'दुख सुख रूप' भाग में चौबीस तीर्थङ्करों का जन्म होता है। वर्तमान में अवसर्पिणी काल के चार भाग बीत चुके हैं और पाँचवां भाग चल रहा है। अब करोड़ों वर्षों तक किसी तीर्थङ्कर का जन्म नहीं होगा क्योंकि तीर्थङ्कर केवल चौथे भाग अर्थात् दुःख सुख रूप में ही प्रकट होते हैं। ऋषभनाथ इस अवसर्पिणी काल के तीसरे भाग के अन्त में हुए और अब उस काल का पाँचवां भाग है। इसकी काल गणना असम्भव है और इसे करोड़ों वर्षों में गिनना होगा।

हिन्दू धर्म ग्रन्थों में ऋषभनाथ को मानव जाति के आरम्भकर्त्ता मनु और सतरूपा से पाँचवीं पीढ़ी में माना जाता है। तदनुसार वह प्रथम सतयुग के अन्त में उत्पन्न हुए। तब से अब तक अट्ठाईस सतयुग हो चुके हैं। इस प्रकार जैन व हिन्दू दोनों का विश्वास है कि ऋषभनाथ जी का प्रादुर्भाव काल कल्पनातीत अतीत की गाथा है। जैन परम्परा में ऋषभ के पूर्व चौदह मनु हुए जिन्होंने मानव जाति के कल्याण के निमित्त विभिन्न युगों में मार्ग प्रशस्त किया। चौदहवें मनु नाभिराय ने बच्चों का नाल कटवाने की प्रथा चलाई जिसके फलस्वरूप उनका नाम नाभि पड़ा। इन्हीं की पत्नी मरुदेवी से ऋषभनाथ का जन्म हुआ। ऋषभदेव ने नगर नियोजन, लौकिक व व्यावहारिक ज्ञान की शिक्षा दी तथा कृषि कर्म की स्थापना की। वास्तव में उन्होंने जिन प्रमुख कार्यों का शुभारम्भ किया उन्हें षट्कर्म कहते हैं, वे हैं—कृषि, असि, मसि, शिल्प, वाणिज्य और विद्या। प्रजा-पालन के इन महत्त्वपूर्ण कार्यों की स्थापना के कारण ऋषभदेव को प्रजापति या ब्रह्मा भी कहते हैं। इनकी पत्नी सुनन्दा और नन्दा से सौ पुत्र उत्पन्न हुए जिनमें ज्येष्ठ भरत थे। राज सभा में नृत्यांगना नीलांजना की मृत्यु से इन्हें वैराग्य हुआ और तपस्या के लिए वनवास स्वीकार कर कैवल्य ज्ञान लाभ किया।

आदि जिन होने के फलस्वरूप अन्य सभी चौबीस तीर्थंकरों में श्री ऋषभनाथ का स्थान अग्रणी है अतः यह स्वाभाविक था कि जब मूर्ति पूजा का श्रीगणेश हुआ तो आदिनाथ को ही प्रमुखता दी गई। वैसे जैनधर्म में प्रतिमा पूजन उतना प्राचीन माना जाता है जितना कि स्वयं जैनधर्म अथवा मानव सभ्यता का आरम्भ तथापि इस कथन को पुष्ट करने के लिए पुरावशेषों का अभाव है।

सिन्धु संस्कृति में हड़प्पा से प्राप्त लाल पत्थर के छोटे नग्न धड़ को कुछ विद्वानों ने जिन मूर्ति माना है। यदि इस मत को मान्यता दी जाय तो अब से लगभग चार-पाँच हजार वर्ष पहले की मूर्ति वर्धमान महावीर या पार्श्वनाथजी की तो हो नहीं सकती। नेमिनाथ जो महाभारतकालीन थे, को इतनी प्रसिद्धि नहीं हुई होगी कि सिन्धु संस्कृति में उनकी मूर्ति की आवश्यकता की अनुभूति हुई हो। अन्य बीस तीर्थंकर स्वयं जैन शास्त्रों में विशेषकर कल्प-सूत्र में केवल नाममात्र से जाने जाते हैं। अतः उनमें से किसी की मूर्ति का निर्माण अकल्पनीय है। इस स्थिति में उक्त पुरुष धड़ को मात्र ऋषभनाथजी की ही मूर्ति माना जा सकता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है उस समय तीर्थंकरों के परिचय चिह्नों का आरम्भ नहीं हुआ था अतः

Ac. Gunratnasuri MS		Jin Gun Aradhak Trust

सन्दर्भित मूर्ति को निर्विवाद रूप से तो नहीं अपितु अनुमान से आदिनाथ मान लेने में कोई आपत्ति प्रतीत नहीं होती। कलात्मक दृष्टि से यह बड़ी विलक्षण कृति है। इसमें अनेक परवर्ती कलाशैलियों का पूर्वाभास झलकता है। मस्तक, बाहें और टाँगें न होने पर भी सन्धि के रेखा चिह्न इङ्गित करते हैं कि ये अवयव अलग से बनाकर लगाए गए थे। शरीर यष्टि का आरोह अवरोह जहाँ यूनानी कला के निकट है वहीं पेट का तुन्दिल रूप कुषाण अथवा कुछ पूर्ववर्ती यक्ष मूर्तियों का स्मरण दिलाता है। कुछ खिचा शरीर प्राणायाम प्रक्रिया का संकेत करता है जिसे भारतीय कलाकार ही मूर्तरूप दे सकता था। कुल मिलाकर यह अद्भुत मूर्ति रहस्य की अनेक पर्तें समेटे हुए हैं। कुछ लोग इसे यक्ष प्रतिमा स्वीकार करते हैं।

हड़प्पा संस्कृति के पश्चात् जिन मूर्ति सम्बन्धी पुरावशेषों का लगभग दो सहस्राब्दियों से अधिक का लम्बा अन्तराल बीत जाता है और द्वितीय शती ई० पू० के उड़ीसा में खण्डगिरि की गुफा में हाथी गुम्फा अभिलेख से यह रहस्योद्घाटित होता है कि कलिंगाधिपति खारवेल ने अपने शासन काल के बारहवें वर्ष में मगध पर आक्रमण कर अपनी विजय के स्मृति चिह्न के रूप में उस जिन प्रतिमा को हस्तगत कर लिया जिसे नन्द राजा कलिंग से मगध ले गया था। अर्थात् चौथी शती ई० पू० में यह जिन मूर्ति कलिंग में स्थापित थी तो अवश्य ही इसका निर्माण पहले हुआ होगा।

मान्यता है कि पटना के समीप लोहानीपुर से प्राप्त नग्न पुरुष धड़ जिस पर मौर्यकालीन पालिश है वही जिन मूर्ति है जिसका उल्लेख खारवेल के अभिलेख में है। यहाँ कुछ तथ्य विचारणीय हैं। पहली बात तो यह है कि यह मूर्ति मूल रूप में कहाँ प्रतिष्ठित थी, कहाँ स्थानान्तरित हुई, पुनः बिहार कैसे पहुँची आदि रहस्य बने हुए हैं। दूसरा बिन्दु यह है कि इस प्रकार की पालिश अशोक से पहले प्रचलित नहीं थी और न पूर्ववर्ती प्रस्तर मूर्तियों के निर्माण की परम्परा के उदाहरण मिले हैं। अतः सन्दर्भित जिन प्रतिमा को नन्द राज का समकालीन मानने का औचित्य नहीं प्रतीत होता।

इसे किस जिन की प्रतिमा माना जाए यह भी गुत्थी बनी है। अवश्य ही यह जिस निर्माण काल का प्रतिनिधित्व करती है उस समय तीर्थंकरों के परिचय चिह्न प्रचलित नहीं हुए थे। इसमें भी सन्देह है कि चौबीस तीर्थंकरों की मान्यता उस समय तक प्रतिष्ठित हुई होगी। तथापि जैसा कि पहले स्पष्ट किया गया है ईसा से कई शताब्दियों पूर्व ऋषभनाथ को पर्याप्त लोक प्रतिष्ठा मिल चुकी थी। अतः प्रतिमा को आदिनाथ की मूर्ति भी माना जा सकता है। खारवेल के अभिलेख में जिस प्रतिमा का उल्लेख है उसे कलिंग जिन कहा गया है—

> द्वादशे च वर्षे........सहस्रैः वित्रासयति उत्तरापथ राजान्........
> मागधानां च विपुलं भयं जनयन् दृस्त्यश्वं कलिंग जिनं
> सन्निवेश........अंङ् मगध वसुं च नयति।

अब यह विचारणीय हो जाता है कि कलिंग में उस समय किस तीर्थंकर की मान्यता थी। इस पर विद्वानों ने भिन्न मत व्यक्त किए हैं। अवश्य ही यह जिन जनमानस में और राजकुल में इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके थे कि वह एक क्षेत्र विशेष अथवा उस समय की

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पारिभाषिक भाषा में देश विशेष के इष्ट देवता के रूप में प्रतिष्ठिन व पूज्य हुए और कई शताब्दियों तक यह मान्यता स्थिर रही। ऐसा प्रतीत होता है कि यह महावीर जी से पृथक जिन रहे होंगे क्योंकि महावीर जी बिहार में उत्पन्न हुए, को नन्दराज या खारवेल के समय कलिंग जिन के रूप में प्रतिष्ठित करने का औचित्य नहीं प्रतीत होता। यही बात नेमिनाथ व पार्श्वनाथ के बारे में कही जा सकती है। दूसरी ओर ऋषभनाथ जी को सार्वदेशिक प्रतिष्ठा महावीर जी से पूर्व ही मिल चुकी थी। अतः खारवेल के लेख में कलिंग जिन का अभिप्राय ऋषभनाथ से लिया जा सकता है।

हड़प्पा और लोहानीपुर की इन कुछ अनिश्चित और संदिग्ध मूर्तियों के पश्चात् जैन मूर्तिकला का प्रभात मथुरा में उदित होता है। इनका शुभारम्भ प्रथम शती ई० पू० में बने आयाग पटों से होता है जिनमें अधिकांशतः बहुत से शोभा चिह्न उत्कीर्ण रहते हैं। कुछ में तीर्थंकर की छोटी आकृति है जिनमें परिचय चिह्न न होने से पहचान सम्भव नहीं, हाँ पार्श्व-नाथ को सर्पफणों से आच्छादन की परम्परा चिरकाल से चली आ रही है और एक आयाग पट में भी इसका अंकन है। शेष तीर्थंकरों को नामोल्लेख से ही जाना जा सकता है।

आयाग पटों कुछ समय पश्चात् ही जनों की स्वतंत्र मूर्तियों का निर्माण मथुरा में आरम्भ हुआ और शीघ्र ही प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ को सर पर लटकती जटाओं के साथ प्रदर्शित किया जाने लगा। मथुरा में इनकी मूर्तियाँ तीन मुद्राओं में मिलती हैं। पहले पद्मासन में ध्यानस्थ, दूसरी तपस्यारत खड़ी जिसे कायोत्सर्ग कहते हैं, तीसरी सर्वतोभद्र अथवा चौमुखी जिसमें चौकोर स्तम्भ पर चार जिन प्रतिमाएँ चार दिशाओं की ओर देखती बनी रहती हैं। ये प्रायः खड़ी हैं और नीचे ब्राह्मी लिपि में अभिलेख होता है। इन चार जिनों में ऋषभनाथ को कन्धे को छूते केश से और पार्श्वनाथ को सर्प छत्र से पहचानते हैं। अन्य दो का परिचय सम्भव नहीं। वैसे मूर्ति अभिलेख व जैन साहित्य के अध्ययन से यह तथ्य प्रकट होता है कि मथुरा में ऋषभनाथ, पार्श्व/सुपार्श्वनाथ, नेमिनाथ और वर्धमान महावीर की पूजा प्रचलित थी।

उक्त तीन प्रकार की मूर्तियों के अतिरिक्त मथुरा से ही एक प्रस्तर पट मिला है जो द्वितीय-प्रथम शती ई० पू० का है। इस पर ऋषभनाथ के वैराग्य का अंकन माना जाता है। एक नर्तकी राजसभा में नृत्य कर रही है, वादक वाद्ययंत्र बजा रहे हैं। साथ ही नग्न व्यक्ति वैराग्य भाव से चल रहा है। कहते हैं कि राजनर्तकी नीलांजना एक बार ऋषभनाथ की राजसभा में ही नृत्य करते हुए ही संज्ञाशून्य हो गई। उसकी पीड़ा व छटपटाहट को देखकर ऋषभनाथ के चित्त स्थिर में वैराग्य का संचरण हो गया और राजपाट छोड़कर तपस्या के लिए वन में चले गए। तीर्थंकरों की जीवन लीला से सम्बन्धित घटनाओं का अंकन बहुत ही दुर्लभ होता है। इस दृष्टि से राज्य संग्रहालय, लखनऊ में सुरक्षित इस प्राचीन वास्तु अवशेष का अप्रतिम महत्त्व है।

जिस प्रकार मथुरा का अन्य देव अथवा महापुरुषों की प्रतिमाओं के निर्माण में विशिष्ट योगदान रहा है उसी प्रकार आरम्भिक जैन मूर्तियों की थाती भी मथुरा ने ही भारत को सौंपी है। इस दृष्टि से प्रतिमा विज्ञान, तत्क्षण एवं सौन्दर्य बोध की मान्यताएँ भी प्रतिष्ठापित

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

हुई हैं। मथुरा कलाशैली में चित्तीदार लाल अथवा भूरे पत्थर का प्रयोग जैन मूर्तियों के लिए भी हुआ। जिन मूर्तियों के वक्ष को श्रीवत्स चिन्ह से लांछित करना यहाँ की विशिष्ट परम्परा है जिसे कई क्षेत्रों में अपनाया गया किन्तु पूर्वी तथा दक्षिणी भारत में मूर्तियाँ प्रायः बिना श्रीवत्स चिन्ह के बनी। ऋषभनाथ की मूर्तियाँ भी इसी तथ्य को प्रमाणित करती हैं। मथुरा में जिन मूर्तियों की चरण चौकी पर अधिकांशतः लेख मिलता है जिसमें संवत् और जैन संगठन तथा समाज का उपयोगी विवरण मिलता है।

गुप्त काल में शास्त्रीय लक्षणों के आधार पर जिन प्रतिमाओं का निर्माण हुआ अथवा प्रचलित मूर्ति परम्परा के अनुसार प्रतिमा लक्षण बने यह कहना कठिन है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि बृहत्संहिता तथा आदिनाथ की मथुरा से प्रसिद्ध मूर्ति लगभग समकालीन है तदनुसार :

आजानुलम्बबाहुः श्रीवत्सांकः प्रशान्त मूर्तिश्च।
दिग्वासास्तरुणो रूपवांश्च कार्योऽर्हतां देवः॥—५८/४५

समुद्र व सागर द्वारा स्थापित गुप्तकालीन ब्राह्मी लिपि में अभिलिखित मूर्ति जो मथुरा संग्रहालय में प्रदर्शित है इसलिए अप्रतिम महत्त्व की है कि इसमें 'ऋषभस्यप्रतिमा' भी लिखा है। इससे ऋषभनाथ की मूर्तियों को पहचानने में कालान्तर में बड़ी सरलता हुई। कन्धों पर लटकती जटा मानक चिह्न बन गई।

मथुरा की जैन और विशेष रूप से ऋषभ प्रतिमाओं की समीक्षा करते हुए कंकाली से प्राप्त और अब राज्य संग्रहालय लखनऊ में प्रदर्शित एक वृषारोही की मूर्ति का उल्लेख आवश्यक है जो शुंग काल की है। सम्भव है यह स्वतन्त्र मूर्तियों के निर्माण के पूर्व ध्वज मूर्ति के रूप में प्रतिष्ठापित की गई हो जिसका अभिप्राय ऋषभ से हो।

गुप्तोत्तर काल में अन्य जिनों के साथ ऋषभनाथ के प्रतिमा लक्षण पूर्णतया सुनिश्चित हो गए और पहचानने की कठिनाई का समाधान ढूँढ लिया गया। मध्यकाल में मूर्तियाँ बहु आयामी हो गईं। उनके साथ पार्श्वचर या शासन देवता भी अंकित होने लगे। तदनुसार ऋषभ चिह्न वृष अथवा बैल निश्चित हुआ, गोमुख उनके यक्ष बने और शासन देवी का स्थान चक्रेश्वरी ने ग्रहण किया।

मध्ययुग अर्थात् नवीं शती ई० से प्रायः सभी जिन मूर्तियाँ लक्षण वृत्ति का अनुसरण करती हैं। हाँ, क्षेत्रीय भेद स्पष्ट हैं। जैसे कहीं श्रीवत्स चिह्न है व कहीं नहीं। कहीं वह दिगम्बर हैं और कभी-कभी वस्त्र के साथ भी प्रदर्शित किए हैं। जैसे चौपड़ा खान देशसे मिली कांस्य प्रतिमा जो लगभग आठवीं शती की है और प्रिंस आफ वेल्स संग्रहालय बम्बई में सुरक्षित है, में ऋषभनाथ धोती पहने हैं। इसी संग्रहालय में राजस्थान से प्राप्त दसवीं शती की एक प्रस्तर मूर्ति भी है जिसमें धोती पहने दिखाया है।

मध्ययुग में चिह्न व शासन देवताओं के साथ अन्य आकृतियाँ जैसे गण धारणचँवर धारी, उपासक व कभी-कभी दानकर्ता की आकृतियों को भी प्रधान मूर्ति के साथ बनाया गया।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

ऊपर प्रभा एवं मालाधारी गन्धर्व भी अंकित हुए। साथ ही देव दुन्दुभि वादक की प्रस्तुति भी आवश्यक हो गई। ऋषभनाथ की कुछ मूर्तियों की पार्श्व पट्टी गज, सिंह, शार्दूल आदि से अलंकृत की गई। अंकित तथा उत्कीर्ण मानकों को अष्ट प्रातिहार्यों के रूप में मान्यता दी गई।

अशोकवृक्षः सुरपुष्पवृष्टिः दिव्यध्वनिश्चामरमासनं च।
भामण्डलं दुन्दुभिरातपत्रं सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणाम्॥

इनके प्रदर्शन से मुख्य देवता के प्रभाव की अतिशयता अभिव्यक्त की जो मध्ययुगीन मूर्ति तक्षण की प्रधान विशेषता है।

अन्य जिनों के साथ भी ऋषभनाथ का अंकन हुआ। यदि वह चौबीस तीर्थंकरों सहित हैं तो उसका नाम चौबीसी पड़ा। यदि तीन जिन हैं तो उसे त्रितीर्थी, पाँच होने पर पंचतीर्थी कहा जाता है। यह परम्परा कुषाण युग से उत्तर मध्य काल तक चलती रही।

क्षेत्रीय दृष्टि से ऋषभनाथ की प्रतिमाएँ प्रायः समस्त भारत से ही मिली हैं तथापि गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश प्रमुख हैं। बिहार, बंगाल व उड़ीसा से भी कुछ मूर्तियाँ मिली हैं।

पूर्ववर्ती प्रतिमाएँ अधिकतर पाषाण की हैं। गुप्त काल से धातु प्रतिमाएँ बनने लगीं और मध्यकाल में भक्ति व निज सेवा के प्रचलन से छोटी धातु मूर्तियाँ बहुल संख्या में बनीं। बहुत सी मूर्तियों पर संवत् आदि भी उत्कीर्ण रहते हैं जिनसे उनका ऐतिहासिक और कलागत महत्त्व बढ़ जाता है।

पटना संग्रहालय को चौसा नामक स्थान से सोलह जैन धातु प्रतिमाएँ मिलीं जो प्रथम शती से छठी शती तक की हैं। इनमें कायोत्सर्ग मुद्रा में ऋषभनाथ भी हैं। इसी प्रकार बड़ौदा संग्रहालय में अकोटा से मिली दुर्लभ धातु प्रतिमाओं का संग्रह है जिनमें आदिनाथ की भी सुन्दर प्रतिमा है। कलात्मक दृष्टि से यह बहुत सुन्दर और गुप्त व गुप्तोत्तर काल की समुन्नत कला शैली का प्रतिनिधित्व करती हैं।

भारत के तो प्रायः सभी प्रमुख संग्रहालयों में ऋषभनाथ की मूर्तियाँ सुरक्षित हैं। कुछ वीथियों, सुरक्षा संग्रहों व पुरास्थलों पर भी एकत्र की गई हैं। साथ ही विदेशी संग्रहालयों में भी इनका प्रतिनिधित्व है। इस दृष्टि से बंगलादेश, फ्रांस, इंग्लैंड, डेनमार्क, जर्मनी व अमेरिका के संग्रहालय उल्लेखनीय हैं। अकेले ब्रिटिश म्यूजियम में ऋषभनाथ की अनेक प्रस्तर व धातु मूर्तियाँ हैं। स्व० डॉ० ब्रजेन्द्रनाथ शर्मा ने भारत तथा विदेश के संग्रहालयों में सुरक्षित जैन मूर्तियों का परिचय अपनी एक पुस्तक में दिया था। यह बहुत महत्वपूर्ण सर्वेक्षण था जो १९७९ में प्रकाशित हुआ। तब से सामग्री में और अधिक वृद्धि हुई है और प्रामाणिक अभिलेखों के आधार पर अद्यतन सामग्री अपेक्षित है।

महानिदेशक, राष्ट्रीय संग्रहालय,
११, जनपथ, नई दिल्ली-११००११

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जैन संस्कृति के विकास में दक्षिण की नारियों का योगदान*

—डॉ० ऋषभचन्द्र फौजदार

भारतीय संस्कृति में नारी को सम्मानपूर्ण स्थान दिया गया है। पुरुष वर्ग धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक उत्थान के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहा है। इस पुण्यकार्य में नारी भी उससे पीछे नहीं रही। जैनधर्म और संस्कृति के प्रचार-प्रसार, सुरक्षा एवं समृद्धि में नारी वर्ग का उल्लेखनीय योगदान है। दक्षिण भारत की नारियों ने जैनधर्म की उन्नति के लिए अनेक कार्य किये हैं। इनमें राजघरानों, सामन्तों, सेनापतियों तथा सामान्य परिवारों की महिलाएँ सम्मिलित हैं। यहाँ शिलालेखों के अनुसार कतिपय विशिष्ट महिलाओं का परिचय और उनके द्वारा किये गये कार्यों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है—

कुन्दाच्चि—देवरहल्लि में पटेल कृष्णय्य के ताम्रपत्रों पर लिखे ७७६ ई० के लेख के अनुसार कुन्दाच्चि सगरकुलतिलक मरुवर्मा की पुत्री थी। इसके पति पृथिवी-निर्गुण्ड राज थे। इनका पहला नाम परमगूल था। कुन्दाच्चि ने श्रीपुर की उत्तर दिशा में "लोकतिलक" नाम का जिनमन्दिर बनवाया था। उसके जीर्णोद्धार, नवनिर्माण, देवपूजा, दानधर्म आदि के लिए परमगूल के अनुरोध पर महाराज परमेश्वर श्री जसहितदेव ने "पोकनल्लि" ग्राम दान में दिया था। उक्त दान सभी करों और बाधाओं से मुक्त था। लेख में गाँव की सीमाओं तथा दान के साक्षियों के भी उल्लेख हैं।[1] यह सबसे पहिली महिला है, जिसके धर्मप्रेम और त्याग का परिचय इतिहास में मिलता है।

चट्टलदेवी—चट्टलदेवी सान्तार परिवार की महिला थी। यह रक्कतगंग की पुत्री थी। इसका विवाह तोण्डेनाडू के शासक तथा कांची के अधिपति काडुवेट्टि से हुआ था। हुम्मच[2] के लेख संख्या—२१३, २१४, २१५ एवं २१६ के अनुसार चट्टलदेवी ने अपने पूर्वजों के स्मारक के रूप में "उर्व्वीतिलक" नाम से प्रसिद्ध पंचबसदि नामक जिनमन्दिर निर्मित कराया था। इस देवी ने तालाब, कुआँ, बसदि, मन्दिर, नाले, पवित्र स्नानागार तथा कुंज आदि बनवाये। पंचकूटबसदि की मरम्मत, ऋषिवर्ग के आहार एवं पूजा प्रबन्ध के लिए चट्टलदेवी ने "कोट्ट" आदि ग्राम दान में दिये। उक्त दान आचार्य कमलभद्रदेव के पाद प्रक्षालित करके दिया था। यह देवी चार प्रकार के दान देने के लिए विख्यात थी। लेख सं० २१५ में इसकी तुलना रोहिणी, चेलिनी और सीतादेवी से की गई है।

बाचलदेवी—बाचलदेवी गंग-पेर्म्माडिदेव की अर्द्धांगिनी थी। इस देवी ने अपने पति को

---

* जैन इण्टरनेशनल, अहमदाबाद द्वारा आयोजित सेमिनार १९९३ के लिए लिखा गया शोध-पत्र।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

"पात्रजगदले" की उपाधि दी थी। आलहल्लि[3] के लेख अनुसार बाचलदेवी ने बन्निकेरे नामक स्थान में एक सुन्दर जिनालय बनवाया था। यह देवी मूलसंघ और देशीगण की गृहस्थ शिष्या थी, इसलिए इसने देशीगण के लिए भी एक चैत्यालय बनवाया था। इसके सहयोग से बूदँगेरे और बन्निकेरे की कुछ जमीन, एक बगीचा, दो कोल्हू एवं बूदंगेरे तथा बन्निकेरे नगरों की चुंगी की कुछ आमदनी का दान दिया गया था। लेख में इसके लिए आहार, अभय, भैषज्य और शास्त्रदान में प्रवीण तथा जिनशासन साम्राज्य यशः पताके आदि अनेक विशेषण प्रयुक्त हुए हैं। ऐलक पन्नालाल दिगम्बर जैन सरस्वती भवन, उज्जैन से प्राप्त नियमसार की ताडपत्रीय हस्तलिखित प्रति की प्रशस्ति में भी बाचलदेवी की प्रशंसा की गई है। शास्त्रदान में इस महिला का विशेष योगदान रहा है। प्रशस्ति के अनुसार यह पंपादेवी की पुत्री थी।

अत्तिमब्बे—इसका अपरनाम अत्तिमब्बरसि भी प्राप्त होता है। अत्तिमब्बे पश्चिमी चालुक्य राजा तैलप के सेनापति मल्लप्प की पुत्री थी। इसके पति का नाम नागदेव और पुत्र का नाम पदुवेल तैल था। इस धर्मपरायण महिला ने पोन्नकृत शान्ति-पुराण की हस्तलिपि में एक हजार प्रतियाँ तैयार करवाकर वितरित कराईं / सोने तथा अन्य बहुमूल्य रत्नों की डेढ़ हजार मूर्तियाँ भी बनवाईं। अत्तिमब्बे ने अपना धन व्यय करके उक्त कार्य सम्पन्न किये थे।[४] किसी नारी द्वारा शास्त्रदान और संरक्षण का यह अद्वितीय उदाहरण है।

अत्तिमब्बे के विषय में एक चमत्कारिक घटना का उल्लेख पं० के० भुलबली शास्त्री ने इस प्रकार किया है।[५]....."एक दिन ग्रीष्मकाल में यह श्रवणबेलगोला स्थित बाहुबलि स्वामी की सर्वांगसुन्दर, लोक-विख्यात मूर्ति के दर्शनार्थ वहाँ पर गयी थी। पर्वत पर चढ़ती हुई अत्तिमब्बे तीखी धूप से सन्तप्त हो सोचने लगी कि अगर इस समय कुछ वर्षा होती तो बड़ा अच्छा होता। फलतः तत्क्षण अकस्मात् मेघ एकत्रित होकर जोरों से पानी बरसाने लगा। इस अचिन्तित आश्चर्यकारी घटना से अत्तिमब्बे की भक्ति द्विगुणित हुई। यह निरायास पर्वत पर चढ़कर असीम भक्ति से बाहुबली स्वामी की पूजा कर सन्तुष्ट हुई। कन्नड कवि रत्नत्रयों में अन्यतम सर्वमान्य महाकवि रन्न ने अपने अजितपुराण में इस घटना का उल्लेख किया है। इस देवी ने अपने प्रभाव से गोदावरी के प्रवाह को भी रोक दिया।[६]

पोचलदेवी—शिलालेखों[७] में इसके पोचाम्बिका, पोचिकब्बे तथा पोचब्बे नाम मिलते हैं। इसके पति का नाम "एचि" या "एचिराज" था, जो होय्यसल नरेश विष्णुवर्द्धन का महा-दण्डनायक था। दण्डनायक गंगराज इनका पुत्र था, उसने अपनी माता के लिए "कत्तले बस्ति" का निर्माण कराया था। लेख सं० ४४ में पोचलदेवी के अनेक धर्म कार्यों का उल्लेख है। इस देवी ने बेलगोल तीर्थ के अनेक जिनमन्दिरों के लिए महादान दिया था। इससे सल्लेखनापूर्वक पंचपदों का उच्चारण करते हुए शक सं० १०४३ में आषाढ़ शुक्ल पंचमी सोमवार के दिन देह त्याग किया।[८] पोचलदेवी का उल्लेख अनेक शिलालेखों में हुआ है।

शान्तलदेवी—शान्तलदेवी विष्णुवर्द्धन की पटरानी थी। इसके पिता का नाम मारसिंगय्य तथा माता का नाम माचिकब्बे था। ये प्रभाचन्द्र सिद्धान्तदेव की शिष्या थीं। चन्द्रगिरि पर्वत के लेख (संख्या ५३) के अनुसार शान्तलदेवी ने सवतिगन्धवारण बस्ति

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

नामक जिनमन्दिर का निर्माण कराया और मन्दिर की व्यवस्था के लिए विष्णुवर्द्धन नरेश की अनुमति से भूमिदान दिया था। यह दान मूलसंघ, देशियगण, पुस्तक गच्छ के मेघचन्द्र त्रैविद्यदेव के शिष्य प्रभाचन्द्र सिद्धान्तदेव को दिया गया था। लेख सं० ५६ के अनुसार शान्तलदेवी ने सवतिगन्धवारण बस्ति के साथ अभिषेक के लिए एक तालाब बनवाया तथा बस्ति के लिए "मोट्टनबिले" नामक ग्राम दान में दिया। यह लेख शान्तलदेवी के दान का स्मारक है। इस देवी ने श्रमणबेलगोल में शान्तिनाथ की मूर्ति भी प्रतिष्ठित कराई थी।[९] अलेसन्द्र के एक लेख के अनुसार भरत दण्डनायक की पुत्री, एचिराज की पत्नी तथा रायदेव और मरियाने की माँ शान्तलदेवी ने सिन्दघट्ट में एक पार्श्व जिन मन्दिर बनवाया था।[१०] शिलालेखों में शान्तलदेवी को द्वितीयलक्ष्मी, अभिनवरुक्मिणीदेवी, सत्यभामा, बृहस्पति, प्रत्युत्पन्न-वाचस्पति, पतिव्रताप्रभावप्रसिद्धसीता, सकलवन्दिजन-चिन्तामणि, सम्यक्त-चूड़ामणि, उद्वृत्तसवतिगन्धवारण, मनोजराजविजयपताका, निजकुलाभ्युदयदीपक, गीतवाद्यनृत्यसूत्रधार, जिनसमयमुदितप्राकार, जिनधर्मकथाकथनप्रमोद, आहाराभयभैषज्यशास्त्रदानविनोद, भव्यजन-वत्सला आदि कहा गया है।[११]

लेख सं० ५३ में शान्तलदेवी के स्वर्गारोहण का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—"शक वर्ष १०५० मूरेनेय विरोधकृतसम्वत्सरद चैत शुद्ध पंचमी सोमवारदन्दु सिवगंगेय तीर्थदलु मुडिपि स्वर्गतेया दलु"॥ अर्थात् शक सं० १०५० में चैत्र सुदि ५ सोमवार को शिवगंगे नामक तीर्थस्थान पर शरीर त्याग किया। विन्ध्यगिरि पर्वत के अखण्डबागिलु की शिला पर जो लेख है, उसे भरत चमूपति की सुता शान्तलदेवी ने लिखवाया था।[१२]

जक्कणब्बे—शिलालेखों में इसके जक्कणिकब्बे, जक्कमब्बे तथा जक्किमब्बे नाम भी मिलते हैं। यह महिला बम्मदेव की पत्नी थी। बम्मदेव गंगराज, विष्णुवर्द्धन के बड़े भाई थे। सेनापति बोप्प जक्कणब्बे का पुत्र था। यह मूलसंघ, देशीयगण, पुस्तक गच्छ के शुभचन्द्र सिद्धान्तदेव की शिष्या थीं। जक्कणब्बे ने "मोक्षतिलक" नामक व्रत किया था। इसने एक पत्थर में एक जिनमूर्ति खुदवाकर सन् ११२० ई० में श्रवणबेलगोल में प्रतिष्ठित कराई थी। इसी वर्ष उसने श्रवणबेलगोल में एक तालाब भी खुदवाया था। इस देवी ने "साहलि" या "साणहेल्लि" ग्राम में एक जिनमन्दिर निर्मित कराया था।[१३]

पंपादेवी—पंपादेवी के पिता का नाम तैल सान्तार और माता नाम चट्टलदेवी था। ये दोनों बड़े ही धार्मिक प्रवृत्ति के थे। तैल सान्तार महादानी था, इसलिए इसे "जगदेकदानी" कहा गया था। श्रीवल्लभ अथवा विक्रम सान्तार पंपादेवी का छोटा भाई था। पंपादेवी महापुराण की मर्मज्ञा थी। विदुषी होने के कारण इसे शासनदेवी कहा जाता था। ये वादीभसिंह की शिष्या थीं। पंपादेवी ने एक महीने में उर्व्वीतिलक बसदि के समीप "शासनदेवता" का मन्दिर बनवाया था।[१४] इन्होंने एक पट्टशाला का निर्माण भी कराया था।

पोम्बुच्च—(हुम्मच) के तोरण बागितु के उत्तर स्तम्भ पर स्थित सन् ११४७ के लेख के अनुसार पंपादेवी ने "अष्ट-विधार्चना-महाभिषेक" तथा "चतुर्भक्ति" की रचना

२

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

की थी।[१५] उक्त शिलालेख में इसकी खूब प्रशंसा की गई है। नियमसार की ताडपत्रीय पाण्डुलिपि की प्रशस्ति में भी पंपादेवी की जैनधर्म के प्रति दृढ़ श्रद्धा का विवरण दिया गया है। इसने जिनमन्दिरों के जीर्णोद्वार, पूजन व्यय तथा शास्त्र लेखन आदि के लिए दान दिया था।

आचल देवी—शिलालेखों में आचलदेवी के आचले, आचाम्बा और आचियक्का नामान्तर मिलते हैं। आचलदेवी जैन धर्मानुयायी थीं। ये बालचन्द्र की शिष्या थीं। होय्यसल नरेश बीरबल्लालदेव के मंत्री चन्द्रमौलि इनके पति थे। चन्द्रमौलि शैव थे, इन्होंने आचलदेवी को शैवधर्म में दीक्षित करने के प्रयत्न किये, किन्तु आचलदेवी को प्रभावित नहीं कर पाये। किन्तु आचलदेवी ने अपने प्रभाव से चन्द्रमौलि को जैनधर्म की ओर आकृष्ट किया। लेख संख्या १२४ के १४ पद्यों में आचलदेवी के वंश का वर्णन मिलता है।

लेखसंख्या—१२४ के अनुसार आचलदेवी ने "अक्कनबस्ति" नामक जिनमन्दिर का निर्माण कराया था। इस बस्ति में गर्भगृह, सुखनासि, नवरंग और मुखमण्डप हैं। इसके गर्भगृह में पाँच फुट ऊँची पार्श्वनाथ की सप्तफणी मूर्ति है। सुखनासि में तीन फुट ऊँची पंचफणी धरणेन्द्र और पद्मावती की मूर्तियाँ हैं। मन्दिर की गुम्मटों पर अनेक जिनमूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। यह बस्ति होय्यसल वास्तुशिल्प का अद्वितीय नमूना है।[१६] आचलदेवी ने नरेश बल्लालदेव से "बम्मेयनहल्लि" नामक ग्राम प्राप्त कर उक्त मन्दिर के लिए दान में दिया।[१७] इस देवी के अन्य कार्यों के उल्लेख लेखसंख्या–१०७, ४२६, ४९४ में प्राप्त होते हैं।

उपर्युक्त धर्मशीला नारियों के अतिरिक्त अलियादेवी, हरिहरदेवी, चामलदेवी, कुंकुंममहादेवी अचला, दीवलाम्बिका, वीराम्बिका, पद्मावतीदेवी, सोमब्बे, कोन्तिदेवी आदि के कार्यों के उल्लेख मिलते हैं। इन नारियों ने मन्दिर निर्माण, धर्मशाला निर्माण, जीर्णोद्वार, दान आदि अनेक उल्लेखनीय कार्य किये हैं।

जैनशिलालेख संग्रह एक में प्रकाशित शिलालेखों में अनेक ऐसी महिलाओं के नाम प्राप्त होते हैं, जिन्होंने जैनधर्म में दीक्षित होकर आर्यिका पद ग्रहण किया। उन्होंने आत्मकल्याण के साथ दूसरों के उद्धार के लिए अपना तन, मन और धन समर्पित कर दिया। उनके द्वारा जैन-धर्म और संस्कृति का बहुत प्रचार-प्रसार हुआ है। उनमें कुछ आर्यिकाओं के नाम इस प्रकार हैं—अनन्तामति (लेख सं० २८), कण्णब्बे कन्ति (४६०), कनकश्री कन्ति (११३), जम्बुनायगिर (०'५-,), देवश्री कन्ति (११३), धण्णे कुत्तारेवि गुरवि (१०), नागमति गन्ति (८२), पोल्लब्बे कान्तियर (२४०), प्रभावती (२७), मानकब्बे गन्ति (१३९), राज्ञीमति गन्ति (२०७), शशिमति गन्ति (३५), श्रीमति गन्ति (१९), कान्तियर (२२७), तोमश्री (११३), जाकियब्वे गन्ति (भाग–२, लेख सं० १८५), महासती ह्यर्यले आदि। शक संवत् १०९९ में गोम्मट देव तीर्थ में पंचकल्याणक महोत्सव आयोजित हुआ था। उसमें देवश्री, सोमश्री, गौरश्री और कनकश्री आर्यिकाओं ने भाग लिया था। इनके साथ कुन्दकुन्दान्वय, देशीयगण, पुस्तकगच्छ के अनेक आचार्य और भट्टारक भी सम्मिलित हुए थे।[१८]

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि दक्षिण की नारियों ने जैनधर्म संस्कृति के विकास एवं उसके संरक्षण के लिए अनेक उल्लेखनीय कार्य किये हैं। उनमें नये जैन मन्दिरों का निर्माण, प्राचीन मन्दिरों का जीर्णोद्धार, मन्दिरों की व्यय व्यवस्था के लिए भूमिदान एवं कर से प्राप्त होने वाली राशि के दान सम्मिलित हैं। उन्होंने लोक कल्याण की भावना से प्रेरित होकर तालाब, कुएँ, धर्मशालायें भी निर्मित करवाईं। आहार, अभय, औषध और शास्त्रों का दान किया। प्राचीन शास्त्रों की सुरक्षा एवं प्रचार के लिए उनकी अधिकाधिक हस्तलिखित प्रतियाँ तैयार करवाकर वितरित करवाईं। जैनधर्म की प्रभावना के लिए उत्सव करवाये। इतिहास की सुरक्षा के लिए ताम्रपत्र, शिलालेख आदि का लेखन कार्य कराया। अनेक नारियों ने दीक्षित होकर कठोर व्रताचरण किया। अनेक ने सल्लेखना-समाधि ग्रहण कर स्वर्गारोहण किया।

जैनधर्म और संस्कृति के विकास एवं संरक्षण में नारी के योगदान का मूल्यांकन आवश्यक है। इस दिशा में अनुसन्धान की विपुल सम्भावनाएँ हैं। अनुसन्धाताओं का ध्यान इस ओर जाना चाहिए तथा उन्हें समाज और संस्थाओं का यथासम्भव सहयोग मिलना चाहिए।

सन्दर्भ

१. जैन शिलालेख संग्रह, भाग २, पं० विजयमूर्ति, सन् १९५२, लेख संख्या–१२१, पृ० ११२ एवं मेडिएवल जैनिज्म, पृ० १५५।

२. जैन शि० ले० सं० भाग-२, पृ० २८१-३११।

३. जैन शि० ले० सं० भाग-२, लेख सं० २५३।

४. मेडिएवल जैनिज्म, पृ० १५६।

५. जैन सिद्धांत भास्कर, भाग--२ किरण--२, पृ० ४७।

६, जै० शि० ले० सं० भाग--२ ले० सं० ५९, पद्य १४।

७. जै० शि० ले० सं० भाग--१, ले० सं० ४४, ४५, ५९, ६०, ६५, ९०, ३६०, ४८६।

८. इन्तेनिसिदापोचाम्बिके बेलगोलद तीर्थ मोदलागनेकतीर्थंगलोलु पलवुं चैत्यालययंगल माडिसि महादान गेय्दु ॥

""सल्लेखनासम्पददिन्दं देदियोचाम्बिके सुरपदमं लीलेयिं सूरेगोण्डल ॥

सकदर्ष १०४३ नेय सार्व्वरि संवत्सरदाषाढ़ सुद्ध ५ सोमवार सन्यसनमं कैकोण्डु एकपार्श्वनियमदिं पंचपदमनुच्चारिसुत्तं देवलोक्के सन्दलु ॥

जैन शि० ले० सं० भाग--१, पृ० ५१

९. जै० शि० ले० सं; भाग–१, ले० सं० ६२।

१०. जै० शि० ले० सं, भाग–३, लेख नं० ४११।

११. जै० शि० ले० सं०, भाग–१, लेख सं० ५६, ५३।

१२. जै० शि० ले० सं०, भाग–लेख सं० ११५।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

१३. जैन शि० ले० सं० भाग–१, लेख संख्या–४३, ४४६, ४४७, ४८९ एवं जैन सिद्धांत भास्कर, भाग--१३ किरण–१, पृ० ७४।

१४. उर्व्वी-तिलकमनिलिपि वि–१।

गुब्बिसिदवोलोन्दे-तिगलोल, माडिसिदलेनस्कू।

ओब्बंले शासन-देवते।

सब्बोंब्बिं-बन्धेयेनिसि पम्पादेवि ।।

—जैन शि० ले० सं० भाग–३, पृ० ७८

१५. (क) जै० शि० ले० सं० भाग–३, पृ० ७१।

(ख) जैनसिद्धांत भास्कर, भाग–२, किरण–२, पृ० ४७।

१६. जैन शि० ले० सं०, भाग–१, भूमिका, पृ० ४३।

१७. वही, भाग--१, पृ० २३३-२४५।

१८. जै० शि० ले० सं०, भाग १–लेख सं० ११३।

निवास—जैन बाला विश्राम,

धनुपुरा, आरा (बिहार)–८०१३०१।

●

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

वाराणसी का ऐतिहासिक भित्तिलेख

—डॉ० कस्तूरचन्द्र जैन 'सुमन'

(पिछले अंक का शेष भाग)

मूलपाठ-लिपि और लेखन-पद्धति :

१. प्रस्तुत लेख में सामान्यतः अर्वाचीन नागरी लिपि प्रयुक्त हुई है। ओं, भ और क्ष वर्ण प्राचीन हैं। अंक भी प्राचीन शैली में अंकित है।

२. अभिलेख की लेखन शैली कलात्मक है। ओं और ह्रीं दोनों शब्द शिलालेख के क्रमशः आदि और अन्त में शिलालेख के मध्य में उत्कीर्ण किये गये हैं। इसके पश्चात् दूसरी से दसवीं पंक्ति तक आगामी पंक्ति का आकार गत पंक्ति से बढ़ता चला गया है। इस प्रकार शिलालेख की दसवीं पंक्ति आकार में सर्वाधिक बड़ी है।

३. प्रत्येक पंक्ति के आरम्भ और अन्त में तथा श्लोकों के अंकों की दोनों ओर दो-दो खड़ी-छोटी रेखाएँ उत्कीर्ण की गयी हैं।

४. वर्णों में ऋकार संयोजित करने के लिए दो पद्धतियाँ व्यवहृत हुई हैं। प्रथम—जिन वर्णों में अन्त में ऊपर से नीचे खड़ी रेखा है उनमें उस रेखा को किंचित् दायीं ओर घुमाया गया है। जैसे घृत (पं० ३), गृह (पं० ४), वृष (पं० ६), भ्रातृ (पं० १०)। दूसरी पद्धति में वे वर्ण जिनमें पूर्व पद्धति के समान खड़ी रेखा का अभाव है उनमें अर्ध तृ वर्ण की आकृति दायीं ओर उत्कीर्ण की गयी है। जैसे सुकृती (पं० ८), कृतमिदं (पं० १०)।

५. ई स्वर की मात्रा से युक्त वर्ण के शिरोभाग पर अनुस्वार बायीं ओर प्रयोग न होकर दायीं ओर हुआ है। जैसे ह्रीं।

६. अवग्रह बोधक चिह्न का प्रयोग नहीं हुआ है।

७. ङ्, म्, न्, ञ्, अनुनासिकों के स्थान में अनुस्वार प्रयुक्त हुआ है। जैसे—ङ मंगल (पं० ४), तस्यांगजः (पं० ७), ञ—पंचमि (पं० ५), संज्ञः (पं० ८-१०), न—रंध्र (पं० ५), अरिहंत (पं० ८-९), म—गृहं (पं० ४), सुप्रसिद्धं (पं० ५), कृतमिदं (पं० १०), सुचिरं (पं० १०)।

६. सन्धियों और समासों का प्रयोग बोधगम्य है। अंकों को शब्दों में अभिव्यक्त किये जाने में पौराणिक परम्परा का अनुकरण दिखाई देता है। श्लोकों में वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग हुआ है।

७. अनुनासिक और अवग्रह के प्रयोग प्रतिलिपिवाले शिलालेख में हुए हैं।

मन्दिर निर्माता और उनके पूर्वज :

मूल लेख की छठी पंक्ति से दसवीं पंक्ति तक मन्दिर के निर्माताओं और उनके पूर्वजों

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

के नामों का उल्लेख हुआ है। प्रभुदास, अरिहन्तदास, जिनेश्वरदास और मुनीश्वरदास ये चारों सहोदर थे। इन्होंने ही इस मन्दिर का निर्माण कराया था। श्री मवासीलालजी इन चारों के बाबा (पितामह) और श्री गणेशीलाल जी पिता थे। ये अग्रवाल जैन थे। गोयल इनका गोत्र था। ये कहाँ के निवासी थे, शिलालेख से ज्ञात नहीं होता है किन्तु इनके सम्बन्ध में श्री जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग ४१, किरण-१ का 'पं० प्रवर प्रभुदास जी—कृतित्व, व्यक्तित्व और वंशवृक्ष का संक्षिप्त परिचय' लेख पठनीय है।

प्रस्तुत लेख में पं० प्रवर प्रभुदास जी को मूलतः वाराणसी का निवासी बताकर ईसवी सन् १८५० में वाराणसी छोड़कर आरा में रहने लगना बताया गया है। प्रस्तुत लेख के श्री मवासीलाल जी इलाहाबाद के निकट शाहजादपुर के मूल निवासी और ईसवी १८०० के लगभग में वाराणसी के वासी बताये गये हैं।

इससे ज्ञात होता है कि मन्दिर निर्माताओं के पितामह और पिता वाराणसी रहे। स्याद्वाद महाविद्यालय, भदैनी का भवन श्री प्रभुदास जी द्वारा वि० सं० १९१० में बनवायी गयी धर्मशाला है और छात्रावास उनका निवास स्थान।

शिलालेख में श्री प्रभुदास को सुकृती (धर्मात्मा) कहा जाना सार्थक है। श्री सुपार्श्वनाथ दि० जैन मन्दिर, भदैनी, वाराणसी और धर्मशाला इसी प्रकार कौशाम्बी तथा चन्द्रावती के दिगम्बर जैन मन्दिर और धर्मशालाएँ उनकी धार्मिकता के प्रतीक हैं। इनके निर्माता आप ही थे।

श्री प्रभुदास जी के सुपुत्र श्री चन्द्रकुमार जी हुए और चन्द्रकुमार जी के दो पुत्र हुए—राजर्षि बाबू देवकुमार जी और बाबू धर्मकुमार जी। श्रीमती चन्दबाई जी, आरा इन्हीं बाबू धर्मकुमार जी की विदुषी धर्मपत्नी थीं। बाबू देवकुमार जी के दो पुत्र हुए—बाबू निर्मलकुमार जी और बाबू चक्रेशकुमार जी। जैन सिद्धान्त भास्कर के प्रबन्ध सम्पादक श्री सुबोधकुमार जी बाबू निर्मलकुमारजी के द्वितीय पुत्र हैं।

शिलालेख वैशिष्ट्य :

मन्दिर निर्माताओं के वंश परिचय की प्रामाणिकता में इस शिलालेख का ऐतिहासिक महत्त्व है। पण्डित प्रवर प्रभुदास जी के चौथे भाई का नामोल्लेख केवल इसी अभिलेख में हुआ है। अन्य जो मूर्तिलेख, चरणलेख और शासनदेवी-देव लेख उपलब्ध हैं उनमें यह नाम नहीं मिला। इसका कारण शोध-खोज का विषय है।

चरण-लेख :

मन्दिर के गर्भालय के सामने निर्मित कक्ष की—गंगा की ओर उत्तर-दक्षिण दीवाल के द्वार के दायें-बायें एक-एक आला है। दक्षिणी आले में चरण स्थापित हैं। चरण-फलक पूर्व-पश्चिम २० सेंटीमीटर तथा उत्तर-दक्षिण २४ सेंटीमीटर विस्तृत है। चरण एक तेबीस दलीय कमलाकृति पर अंकित हैं। चरणों की लम्बाई १५ सेंटीमीठर तथा सर्वाधिक चौड़ाई ६½ सेंटीमीटर है। इनके निर्माण हेतु देशी पाषाणखण्ड व्यवहृत हुआ है। इस शिलाखण्ड की

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

मुटाई ७ सेंटीमीटर है। सामने की ओर देवनागरी और संस्कृत भाषा में चार पंक्ति का अभिलेख उत्कीर्ण है। अभिलेख निम्न प्रकार है—

मूलपाठ :

१. सम्वत् १९१३ वैसाष शुक्ल पंचम्यां श्रीमद्भट्टारक राजेन्द्रभूषणस्योपदेसा।
२. त् अग्रवालान्वये गोयलगोत्रे श्रीमवासीलालजितत्पुत्रः श्री गणेसीलालजि ····(तत्)
३. पुत्राः श्री प्रभूदास श्री अरिहंतदास श्री जिनेसरदासरिति स्वभार्याभिः सह वाराण–
४. स्यां नगर्यां श्री सुपार्श्वनाथजन्मभूमौ गणधरपादुकायाः प्रतिष्ठा कारापिता ॥

भावार्थ :

सम्वत् १९१३ वैशाख शुक्ल पंचमी में श्रीमान् भट्टारक राजेन्द्रभूषण के सदुपदेश से अग्रवाल अन्वय के गोयल गोत्र में हुए श्री मवासीलाल जी के पौत्र और श्री गणेशीलाल जी के पुत्र श्री प्रभुदास, श्री अरिहन्तदास और श्री जिनेश्वरदास ने अपनी-अपनी धर्मपत्नियों के साथ श्री सुपार्श्वनाथ तीर्थंकर की जन्मभूमि वाराणसी नगरी में गणधर-चरणों की प्रतिष्ठा कराई।

शोधकण :

चरण तल में तेबीस दलीय कमलाकृति के अंकन से तेबीस तीर्थंकरों के चरण भी इन चरणों में गर्भित ज्ञात होते हैं। इस प्रकार ये चरण चौबीसों तीर्थंकरों के गणधरों के प्रतीक के रूप में वन्द्य हैं। गणधरों के नामोल्लेखों का न होना भी इस तथ्य का परिचायक है।

गर्भालय के सामने के कक्ष में ४ फुट ४ इंच का एक चौकोर चबूतरा निर्मित है। इसका निर्माण संभवतः इन चरणों की स्थापना के लिए ही कराया गया होगा। स्थापना काल तक इसका निर्माण नहीं हो सका। फलस्वरूप चरण आले में स्थापित कर दिये गये। इस स्थापना के पश्चात् इस चबूतरे का निर्माण पूर्ण होने पर चरण सरलता पूर्वक स्थानान्तरित न किये जा सके क्योंकि आले में वे सीमेंट द्वारा जोड़ दिये गये थे। अतः वे आले में ही स्थापित रह गये। कुण्डलपुर (दमोह) में श्रीधर केवली के चरण मन्दिर-द्वार के सामने जैसे विराजमान हैं संभवतः ये चरण भी वेदिका द्वार के समक्ष इस चबूतरे पर ही स्थापित किये जाने की योजना रही है। यदि यहाँ स्थापना हो तो अधिक अच्छा होगा। गणधर-चरण बहुत कम स्थलों पर स्थापित मिलते हैं।

मन्दिर-प्रस्तर लेख में मन्दिर-निर्माताओं के जिन नामों का उल्लेख हुआ है उनमें श्री गणेशीलाल के चार पुत्र बताये गये हैं—प्रभुदास, अरिहन्तदास, जिनेश्वरदास और मुनीश्वरदास। प्रस्तुत चरण लेख में मुनीश्वरदास का नामोल्लेख नहीं है।

संभवतः चरण स्थापना के समय श्री मुनीश्वरदास स्वर्गवासी हो गये। उनके न रहने से चरणों की स्थापना मुनीश्वरदास के तीनों बड़े भाईयों ने करायी। पूर्ववत् उत्साह न रहने से चरण प्रतिष्ठित हो जाने पर भी वे यथास्थान स्थापित नहीं किये जा सके। अविनय न हो इस दृष्टि से उन्हें इसे आले में स्थापित कर दिया गया।

चरणों की प्रतिष्ठा मन्दिर-प्रतिष्ठा के एक वर्ष बाद हुई ज्ञात होती है। इस अभिलेख में 'श' वर्ण के स्थान में 'स' वर्ण का और 'ख' वर्ण के लिए 'ष' वर्ण का प्रयोग हुआ है। अ और न अनुनासिक अनुस्वार के रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

भट्टारक राजेन्द्रभूषण

प्रस्तुत लेख से ज्ञात होता है कि श्री मवासीलाल जी के पौत्र और श्री गणेशीलाल जी के पुत्र श्री प्रभुदास, श्री अरिहन्तदास और श्री जिनेश्वरदास भट्टारक राजेन्द्रभूषण जी से प्रभावित थे। यह प्रतिष्ठा उन्होंने इन्हीं भट्टारक के उपदेश से कराई थी।

इस मन्दिर की वेदिका पर विराजमान प्रतिमाओं की प्रतिष्ठाएँ भी इन्हीं भट्टारक जी के उपदेश का फल हैं। इस सन्दर्भ में सप्तफणी, पद्मासनस्थ श्याम संगमरमर पाषाण से निर्मित पार्श्वनाथ तीर्थंकर प्रतिमा की आसन पर एक पंक्ति का नागरी लिपि और संस्कृत भाषा में उत्कीर्ण लेख पठनीय है। पृष्ठ भाग का लेख पढ़ा नहीं जा सका किन्तु सामने के भाग पर उत्कीर्ण लेख पढ़ने में निम्न प्रकार आता है—

।। श्री पार्श्वनाथाय नमः सं-(वत्) १९१३ वैसाष सुदी ५ श्री भ-(ट्टा) रक राजेन्द्र भूषणस्योपदेसात् अग्रवालान्वये गोयल गोत्रे····(संभवतः आगे प्रतिष्ठाकारक श्री गणेशीलाल के पुत्रों के नाम होंगे)।

इसी तथ्य की अभिव्यक्ति मन्दिर की वेदी पर विराजमान मेरु-लेख में भी हुई है। मेरु-सफेद संगमरमर पाषाण से निर्मित है। चारों ओर लघु काय गन्धकुटियाँ है। उनमें कायोत्सर्ग मुद्रा में अर्हन्त-प्रतिमाएँ विराजमान हैं। इस मेरु की आसन पर नागरी लिपि और संस्कृत भाषा में दो पंक्ति का निम्न लेख उत्कीर्ण है—

१. ।। स० (सम्वत्) १९१३ वैसाष सुदि ५ श्री भट्टारक राजेन्द्रभूषणस्योपदेशात् श्री अग्रवालान्वये गोयल गोत्रे श्री मिवासीलालजितत्पुत्रः श्री गणेशीलालजि तत्पुत्राः श्री प्रभूदास श्री अरिहन्तदास ।।

२. ।। श्री जिनेश्वरदासरितैः स्व भार्याभिः सह वाराणस्यां नगर्यां श्री सुपार्श्वनाथस्य जन्मभूमौ प्रतिष्ठा कारपिता ।।

इसी मन्दिर की वेदी पर विराजमान एक तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ-प्रतिमा की आसन पर ऐसा भी लेख उत्कीर्ण है जिसमें भट्टारक राजेन्द्रभूषण जी के दादा गुरु को मूलसंघ के बलात्कारगण, सरस्वतीगच्छ और कुन्दकुन्दाचार्यान्वय का अनुयायी होना दर्शाया गया है। नागरी लिपि और संस्कृत भाषा में उत्कीर्ण दो पंक्ति का यह लेख निम्न प्रकार है—

१. ।। श्रीमत्सुपार्श्वनाथाय नमः विभव नाम संवत्सरे १९१३ वैसाष शुक्ल ५ पंचम्यां शुक्रवासरे श्रीमू-।।

२. ।। लसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये श्री भट्टारक जिनेन्द्र भूषणजिदेव····(आगे का लेख प्रतिमा के पृष्ठ भाग में होने से पढ़ा नहीं जा सका किन्तु भट्टारक परम्परा तथा प्रतिमा-प्रतिष्ठापकों के नाम संभावित हैं)।

ऊपर दर्शाये लेख के सन्दर्भ में इस मन्दिर के गर्भगृह द्वार की दायीं ओर एक आले में स्थापित द्विभुजी शासन यक्ष की आसन पर उत्कीर्ण लेख ध्यातव्य है। इस अभिलेख में भट्टारक राजेन्द्रभूषण को भट्टारक जिनेन्द्रभूषणजिदेव का प्रशिष्य और भट्टारक महेन्द्रभूषण

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

के पटट का उत्तराधिकारी शिष्य बताया गया है। नागरी लिपि और संस्कृत भाषा में उत्कीर्ण तीन पंक्ति के शिलालेख में केवल प्रथम दो पंक्तियाँ ही पढ़ी जा सकी हैं। अभिलेख अंश वार्निश से पोत दिया गया है। सीमेंट से जोड़ दिये जाने से आसन के दायें-बायें भाग का लेख भी साधनों के अभाव में पढ़ा नहीं जा सका है। पठित अंश निम्न प्रकार है—

१. ············संवत् वैशाष शुक्ल पंचम्यां शुक्रवासरे श्री मूलसंघे बलात्कारगणे···· (सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दचार्यान्वये)।

२. भट्टारक जिनेंद्रभूषणजिदेवस्तत्पट्टे श्री भट्टारक महेन्द्रभूषणजिदेवस्तत्पट्टे श्रीमद्-भट्टारक राजेन्द्रभूषणजिदेव·········।

३. ············वाराणस्यां नगर्यां·········।

श्री १००८ श्री पार्श्वनाथ-जन्मभूमि, भेलूपुर, वाराणसी में श्री खड्गसेन उदयराज लमेचवाल द्वारा निर्मित दिगम्बर जैन मन्दिर में मुझे एक प्रतिमा लेख ऐसा भी प्राप्त हुआ है जिसमें न केवल भट्टारक राजेन्द्रभूषण की गुरु-परम्परा का उल्लेख हुआ अपितु सम्वत् १९२५ में उन्हें गोपाचल की भट्टारक गद्दी का उत्तराधिकारी भी बताया गया है, जबकि जैन सिद्धान्त भास्कर, भा० ४१, कि० १, पृ० १२ के अनुसार वे ईसवी १९०८ में सम्मेद-शिखर बीसपंथी कोठी के संस्थापक भट्टारक महेन्द्रभूषण के उत्तराधिकारो पट्टशिष्य थे। इससे यह भी ध्वनित होता है कि वे वाराणसी नगरी में सम्वत् १९१२ से सम्वत् १९२५ तक धार्मिक-क्रियाओं को कराने में श्रावकों को उत्साहित करते रहे। इस लेख में प्रतिमा निर्माता को उदयराज का पुत्र बताया गया तथा उदयराज को खड्गसेन लम्बकञ्चुकान्वय का भाई। यह लेख मुख्य वेदी की बायीं ओर की वेदिका की निचली कटनी पर विराजमान श्री सुपार्श्वनाथ-तीर्थंकर-प्रतिमा की आसन पर नागरी लिपि और संस्कृत भाषा में चार पंक्ति से उत्कीर्ण है। प्रतिमा की आसन पर लाञ्छन स्वरूप उल्टा स्वस्तिक भी अंकित है। स्वस्तिक का उल्टा रूप होने में कोई आन्तरिक रहस्य ज्ञात होता है। ऐसी हमें दो प्रतिमाओं के और भी दर्शन प्राप्त हुए हैं। इनमें एक प्रतिमा सोनागिरि के चन्द्रप्रभ मन्दिर के किसी एक समीपवर्ती मन्दिर में विराज-मान है और दूसरी है श्री सुपार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर, भदैनी, वाराणसो की मूलनायक प्रतिमा। ऐसा होने में कलाकार की अज्ञानता और प्रतिष्ठाचार्य की असावधानी भी एक कारण परिलक्षित होता है।

खड्गसेन उदयराज लमेचवाल दि० जैन मन्दिर, भेलूपुर, वाराणसी की इस प्रतिमा का लेख निम्न प्रकार है—

१. श्री सुपार्श्वनाथाय नमः स० (सम्वत्) १९२५ वैशाष सुदि-(५) बुधे श्रीमन्मूल-संघे बलात्कारगणे सर

२. स्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये गोपाचल पट्टे श्री भट्टारक जिनेन्द्रभूषण तत्पट्टे भट्टारक महेन्द्र—

३. भूषण तत्पट्टे भट्टारक राजेन्द्र·षणस्तदुपदेशात्·······लंवकंचुकान्वये·········गोत्रे श्री ह·······

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

४. दास तत्पुत्र चन्द्रसेनि तत्पुत्र खड्गसेनि भ्राता उदयराज तत्पुत्री पुरुषोत्तम········ वाराणसी नगरे प्रतिष्ठा कारापिता।

भदैनी की भद्रता

भदैनी स्थित महाविद्यालय और यहाँ के श्री सुपार्श्वनाथ दि० जैन मन्दिर के दर्शन करके अतीव प्रसन्नता होती है। वर्तमान वेदिका पर यहाँ मेरु सहित संगमरमर पाषाण से निर्मित पाँच अर्हन्त प्रतिमाएँ विराजमान हैं। इनमें चार श्वेत संगमरमर पाषाण की हैं और एक काले संगमरमर पाषाण की। श्वेत पाषाण की दो प्रतिमाएँ तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ की हैं। वे पद्मासनस्थ हैं और उनकी आसनों पर लांछन स्वरूप स्वस्तिक तथा अभिलेख उत्कीर्ण हैं। मूल नायक प्रतिमा का लाञ्छन स्वस्तिक उल्टा उत्कीर्ण है। एक प्रतिमा तीर्थंकर नेमिनाथ की है। यह भी पद्मासनस्थ है। लाञ्छन स्वरूप शंख आसन पर उत्कीर्ण है। मेरु और पार्श्वनाथ प्रतिमा की चर्चा हम पहले ही कर चुके हैं।

इन प्रतिमा लेखों में वाराणसी श्री सुपार्श्वनाथ की जन्मभूमि कही गयी है। भदैनी की भद्रता पावन गंगा के पवित्र भदैनी घाट पर निर्मित सुपार्श्वनाथ मन्दिर में ही अन्तर्निहित है। उसे अक्षुण्ण बनाये रखना हमारा कर्त्तव्य है। अच्छा होता कुछ प्रतिभाशाली विद्वान् यहाँ रहकर शोधकार्य करते। जैनदर्शन और धर्म के प्रचार-प्रसार में वे रत रहते। स्याद्वाद महाविद्यालय के छात्र श्री अशोक जैन और श्री प्रकाशचन्द्र जैन, पुजारी श्री खड्गसेन उदयराज दिगम्बर जैन मन्दिर, भेलूपुर, वाराणसी की सौजन्यता का ही प्रतिफल है जो हमें ये लेख प्राप्त हो सके। उनका धार्मिक स्नेह प्रशंसनीय है। दोनों व्यक्तियों के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ। मन्दिर की स्वच्छता में श्री जगन्नाथ ओझा का मन्दिर-स्नेह प्रशंसनीय है।

जैनविद्या संस्थान
श्री महावीरजी (सवाईमाधोपुर)
राजस्थान

●

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सरस्वती की प्राचीन मूर्तियाँ

—गणेशप्रसाद जैन, वाराणसी

अब तक की प्राप्त ज्ञात सरस्वती-मूर्तियों में सर्व-प्राचीन 'मथुरा' के कंकाली-टीले से प्राप्त सरस्वती-देवी की मूर्ति है। 'कंकाली-टीला' आगरा और गोवर्धन सड़क के कोने में मथुरा के दक्षिणी और पश्चिमी किनारे पर स्थित है। यह सात टीलों का समूह है। इसका प्राचीन नाम 'जैन-टीला' था। किन्तु वहाँ कृष्ण भक्तों की बहुलता है, उन लोगों ने 'कंकाली-देवी' का एक छोटा सा नवीन मन्दिर वहाँ पर स्थापित कर, उस टीले का नाम 'कंकाली-टीला' रख कर उसका पूरा-पूरा प्रचार कर इस नये नाम को प्रचलित कर दिया है।

'कंकाली-टीला' की खुदाई सर्वप्रथम सन् १८५३ ई० में जनरल 'सर अलेक्जेन्डर' ने कराया, बाद में भारतीय-पुरातत्त्व के प्रख्यात विद्वान जनरल 'कनिंघम' ने सन् १८७१ई० में टीले के पश्चिमी किनारे की खुदाई कराई। इस खुदाई में उन्हें बहुल संख्यक जैन-प्रतिमायें' प्राप्त हुईं। उनमें से कई पर लेख थे। प्रतिमाओं के अतिरिक्त उन प्राचीन 'जैन इमारतों के खम्बे, सिरदल आदि भी मिले जिनका निर्माण यहाँ विभिन्न समयों में हुआ था। 'कनिंघम' को ईंटों से निर्मित दिवालें भी मिली थीं। यहाँ से प्राप्त शिलालेखों के आधार पर जिन पर शक-सम्वत् में ५ से लेकर ९८ वर्ष तक खुदे हुए थे, उनसे श्री 'कनिंघम' ने अनुमान लगाया कि ई० पहिली-दूसरी शती में 'कंकाली-टीला' की भूमि पर एक विशाल 'जैन स्तूप' विराजमान था।

जनरल 'कनिंघम' के बाद लखनऊ संग्रहालय के अधीक्षक श्री 'फ्यूरर' ने १८८९ से १८९१ तक 'कंकाली-टीले' की विस्तृत खुदाई कराई। इस बार जो प्राचीन अवशेष मिले, उनकी संख्या काफी अधिक थी। खुदाई के विवरण के आधार पर केवल एक वर्ष के उत्खनन में ही ७३७ कलाकृतियाँ प्राप्त हुईं। वे सभी लखनऊ के 'राज्य-संग्रहालय' में भेज दी गईं। 'फ्यूरर' को 'कंकाली-टीला' में ४७ फुट व्यास का ईंटों का एक 'स्तूप' तथा दो प्राचीन जैन-मन्दिर' के अवशेष भी मिले थे। दुर्भाग्य से इन इमारतों के फोटो या रेखाचित्र तक अब प्राप्त नहीं हैं।

अभिलेखों तथा प्राचीन साहित्यिक-ग्रन्थों से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि 'मथुरा' नगर के इस भू-भाग पर ईसा से कई शती पहले से लेकर ई० ११वीं शती तक 'जैन स्तूपों, मन्दिरों एवं विविध मूर्तियों' के निर्माण कार्य होता रहा। इतने लम्बे समय तक 'वास्तु' तथा 'मूर्ति-कला' के विकास का केन्द्र होने के कारण 'कंकाली-टीला' का क्षेत्र निःसन्देह असाधारण महत्त्व रखता है। 'फ्यूरर' के समय यहाँ से खुदाई में प्राप्त तीर्थंकर 'मुनिसुव्रतनाथ' की एक प्रतिमा के लेख पर देव-निर्मित स्तूप उल्लिखित है। वह प्रतिमा ईस्वी की दूसरी शती की है।

लेख इस प्रकार है—**पंक्ति प्रथम**—सं० ७९ व ४ दि० २० एतस्यां पूर्व्वायां कोट्टियेगणो-

वैरायांशाखायां।

Ac. Gunratnasuri MS   Jin Gun Aradhak Trust

पंक्ति द्वितीय—को अथबुधहस्तिआहतो नन्दि (आ) वर्तंस प्रतिमं
निर्वंतंयति

पंक्ति तीसरी—भाविर्प्पये श्राविकाये (दिनाये) दान प्रतिमा बोद्रे
थुर्पेदर्वनिर्मित पृ०

अर्थात्—वर्ष ७९ की वर्षा ऋतु के चतुर्थ मास के बीसवें दिन ढोहियगण की वैर शाखा के आचार्य वद्धहस्ति ने अर्हत् नन्द्यावर्त की प्रतिमा का निर्माण कराया और उन्हीं के आदेश से भार्या श्राविका 'दिना' द्वारा यह प्रतिमा देवनिर्मित 'बौद्ध स्तूप' में दान स्वरूप प्रतिष्ठापित की गई) । जैन शिलालेख संग्रह, भाग २, पृ० ४२) ।

(वूलर, स्मिथ आदि विद्वान् लेख में 'अरनाथ' नाम पढ़ते हैं । प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी ने मुनिसुव्रत नाम पढ़ा) । 'मुनिसुव्रत' नाम अधिक संयत लगता है) ।

इस लेख में मूर्ति-प्रतिष्ठापना के स्थान के सम्बन्ध में लिखा है कि थूपेदेवनिर्मिते । यह 'स्तूप' बौद्ध स्तूप कहलाता था । यह इतना सुन्दर था कि लोग यह कल्पना भी नहीं कर पाते थे कि यह मनुष्यकृत हो सकता है ? उपरोक्त लेख निश्चित रूप से कुषाण-काल का है । पुरातत्त्व-विद् 'बिन्सेण्ट स्मिथ' का भी विश्वास है कि यह स्तूप निश्चित रूप से भारत में 'ज्ञात स्तूपों' में सर्व प्राचीन है ।

उपरोक्त स्तूप के इतिहास और काल-निर्णय के लिए आचार्य 'जिनप्रभसूरिरचित' 'विविध-तीर्थ-कल्प' नामक प्रख्यात ऐतिहासिक-ग्रन्थ का 'मथुरा-कल्प' इस पर प्रकाश डालता है । सूरिजी ने लिखा है कि—

'सातवें तीर्थंकर श्री 'सुपार्श्वनाथ' जी के तीर्थ में 'धर्म रुचि' और 'धर्मघोष' नामक करोमुनि विहार करते हुए एक बार 'मथुरा' पहुँचे । उस समय 'मथुरा-नगरी' बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी यमुनातट पर स्थित थी और परवेष्टित थी । दोनों मुनिराज मथुरा के 'भूतरमण वन में पहुँचे और चातुर्मास योग धारण कर तपस्या में लीन हो गये । उनकी कठोर तपस्याओं से प्रभावित होकर उस वन की अधिष्ठात्री देवी 'कुबेरा' मुनिराजों के चरणों में उपस्थित होकर प्रणाम कर निवेदन करती हुई कहा—'भगवन् ! आपसे मैं अति प्रसन्न हूँ आप मन-चाहा कोई वरदान माँग लें'' । मुनिराज ने उत्तर देते हुए कहा—देवि ! 'हम तो निर्ग्रन्थ मुनि' हैं । हमें कुछ नहीं चाहिये । तब कुबेरा देवी भक्ति भाव से प्रेरित होकर रात्रि में स्वर्ण और रत्नों से मण्डित तोरण मालाओं से अलंकृत शिखर पर तीन छत्रों से सुशोभित एक 'अलौकिक-स्तूप' का निर्माण किया । 'स्तूप' के चारों दिशाओं' में पंचवर्ण-रत्नों की प्रतिमायें' विराजमान कीं, उसमें मूलनायक प्रतिमा की 'सुपार्श्वनाथ स्वामी की थी ।

दूसरे दिन लोग उस अद्भुत अलौकिक-स्तूप को देखकर हैरत में आ गये । उन दोनों मुनियों और चतुर्विध संघ को भारी आनन्द हुआ । वे दोनों मुनि यथासमय वहाँ से कर्मनिष्ट कर सिद्ध परमात्मा बने । तब से वह क्षेत्र सिद्ध क्षेत्र कहलाने लगा ।

'मथुरा' के 'कंकाली-टीला' से प्राप्त सरस्वती देवी की मूर्ति (जे० २४) लखनऊ के पुरातत्त्व संग्रहालय में १ फुट ९½ इञ्च कद की उँकड़ू एक चौकर आसन पर विराजमान

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

है। मस्तक नहीं है, देवी दो हाथों वाली हैं। बाँयें हाथ में सूत्र से बँधी सम्भवतः ताण-पत्रीय पुस्तक है। दाहिना हाथ भी खण्डिता है हथेली व पंजा नहीं है, किन्तु अभय मुद्रा में रहा प्रणीत होता है। वस्त्र साधारण साड़ी सरीखा है जिसका आँचल कन्धों को आच्छादित किये हुए है। दोनों हाथों की कलाइयों में एक-एक चूड़ी है तथा दाहिने हाथ की चूड़ी के ऊपर जपमाला लटक रही है। देवी के दोनों ओर एक-एक उपासक खड़े हैं। उनके केश सुन्दरता से सँवारे हुये हैं। दाहिनी ओर के उपासक के हाथ में एक कलश है, तथा बायीं ओर का उपासक हाथ जोड़े खड़ा है। दाहिनी ओर वाला उपासक कोट पहिरे हुए है, जो शक जाति के म्यूनिख जैसा दिखाई देता है। बाँये ओर वाला भारतीय है, वह एक अधोवस्त्र (धोती) पहिने तथा एक उत्तरीय (दुपट्टा) ओढ़े हाथ जोड़े खड़ा है। सम्भवतः वह पुजारी है। आसन पर सात पंक्तियों का एक लेख प्राकृत-संस्कृत मिश्रित भाषा का ब्राह्मीलिपि में गुप्त-काल का अङ्कित हैं—'बुतहर' साहब ने लेख का अनुवाद किया है। अनुवाद इस प्रकार है :—

"सिद्ध सं० ५४ हेमन्त के चार थे। १० में दिन कैहिय (कोल्लिय) गण, स्थानीय कुल वहर शाखा, श्रीगृह से भोंगतो तो वाचकाचार्य हस्तहस्ति के शिष्यगणे आर्यनागहस्ति के श्रद्धाचारी वाचक आर्यदेव के उपदेश से सिंह के पुत्र लौहयार शोभने सर्वसत्त्वों के हित-सुख के लिये एक 'सरस्वती' की प्रतिमा को दान किया और उसे एक जैन-मन्दिर की रंगशाला में स्थापित की" यद्व मूर्तिदान कौटिक-गण वाचकाचार्य आर्यदेव को सम्वत् ५४ में दान किया था। लिपि आदि से वह वर्ष शक संवत' का प्रतीत होता है। अतः उसका काल ७८ + ५४ = १३२ ई० कुषाण-राजा 'हुष्त्रिक' के समय में पड़ता है। लेख में जो अन्य नाम आये हैं वे सभी उसी 'कंकाली-टीले से प्राप्त सम्वत ५२ की जैन प्रतिमा लेख में भी उल्लिखित हैं। जैन-परम्परा में सरस्वती देवी की आराधना कितनी प्राचीन है। यह तथ्य इस मूर्ति लेख से प्रमाणित होता है।

सरस्वती देवी की इतनी प्राचीन प्रतिमा अन्यत्र कहीं प्राप्त नहीं हैं। हिन्दू धर्म की सरस्वती-मूर्तियाँ गुप्त-काल से पूर्ववर्ती नहीं पाई गई हैं, अर्थात् वे सब इससे दो-तीन शती (सौ वर्षों) पश्चात् की है। 'सरस्वती' देवी की मूर्ति अनेक-स्थानों के जैन-मन्दिरों में प्रतिष्ठित पाई जाती हैं किन्तु अधिकांशतः प्रतिमायें—मध्य-काल की निर्माण हुई हैं। उदाहरणार्थ—देवगढ़ के १९वें मन्दिर के बाहरी बरामदे को सरस्वती देवी की खड़ी चतुर्भुजी मूर्ति है। जिसका काल वि० सं० ११२६ के लगभग सिद्ध होता है। राजपूताने के सिरोही जनपद के अजारी नामक ग्राम के महावीर जैन मन्दिर में प्रतिष्ठित-मूर्ति के आसन पर वि० सं० १२६९ खुदा हुआ है।

सरस्वती देवी की मूर्ति कहीं 'द्विभुज', कहीं 'चतुर्भुज', कहीं 'मयूर' वाहिनी, कहीं 'हंस' वाहिनी पाई जाती है। एक हाथ में पुस्तक अवश्य रहती है। अन्य हाथों में कमल, अक्षमाला और वीणा। अथवा इनमें से कोई एक या दो पाये जाते हैं। अथवा दूसरा हाथ अभय मुद्रा में दिखाई देता है। जैन-प्रतिष्ठा-ग्रन्थों में इस देवी के सभी लक्षण भिन्न-भिन्न रूप में पाये जाते हैं। देवी के जटाओं में चन्द्रकला का भी उल्लेख मिलता है। 'धवला'—टीका

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

'केकती'' वीरसेनाचार्य' ने इस देवी की 'श्रुत देवता' के रूप में वन्दना की है जिसके द्वादशांग वाणी रूप बारह अंग है, सम्यक् दर्शन रूप तिलक है और उत्तम चरित्र रूप आभूषण है।

यह देवी स्वयं वीणा-वाहिनी हैं। उनके चारों ओर संगीतमय वातावरण उत्कीर्ण हुआ उपलब्ध होता है। उदाहरण के लिये, होयसाल (१२वीं सदी) कालीन केशव-मन्दिर की मूर्ति, सोमनाथ की कर्णाटक की मूर्ति और खरौद (म० प्र०) की (१०वीं सदी) की मूर्तियाँ ली जा सकती हैं। जिनमें सीधी तरफ वीणा बजा रही हैं। मत्स्यपुराण में श्लोक है—वेदाः शास्त्राणि सर्वारिणि, नृत्यगीतादि चयन्। न विहीनं त्वयां देवि, तथा मे सन्तुसिद्धयें ॥ देवी स्वयं संगति प्रिय हैं।

'गन्धावल' गोरखपुर की सरस्वती देवी की मूर्ति चमकीले पत्थर की दो हाथों वाली है। यह ११-१२वीं सदी की है। 'पाला' (२४ परगना बंगाल) से प्राप्त (१०वीं सदी) की मूर्ति त्रिभंग मुद्रा में खड़ी है। वह दोनों हाथों में वीणा पकड़े हुए हैं। उसका शरीर पारदर्शक साड़ी से पूर्ण रूप से ऊपर से नीचे तक ढका है।

'विष्णुधर्मोत्तर' के अनुसार 'दक्षिण-होयसाल' की सरस्वती-मूर्तियाँ सप्तभंग-मुद्रा में दाहिने हाथ में व्याख्यान-मुद्रा के अतिरिक्त बाँस की नाल की बनी वीणा, बाँएँ हाथ में कमल के स्थान पर कमण्डलु रखा है। सरस्वती देवी की मूर्ति केवल चार हाथों तक ही सीमित नहीं हैं। जब वह 'शारदा रूप' में चतुःषष्ठि-कला की अध्यक्षा के रूप में होती हैं, उस समय उनके पाँच-मुख और विभिन्न आयुधों से युक्त दस भुजायें होती हैं। वैसे 'विष्णुधर्मोत्तर' तथा 'रूपमंडन' आदि ग्रन्थों के अनुसार सरस्वती देवी चतुर्हस्ता, श्वेतपद्मासना, शुक्लवर्णी-श्वेताम्बरी, जटामुकुट संयुक्ता एवं रत्नकुण्डल मण्डिता हैं।

प्राचीनतम सरस्वती-मूर्ति जो मथुरा के 'कंकाली-टीले' से प्राप्त हुई है। यह ईसा के द्वितीय शताब्दी (१३२ ई० की) मानी गई है। यह कुषाणकालीन मानी गई है। प्रतीक-रूप में—यह भीटा से प्राप्त गोल मोहर पर मद्रघट के रूप में अंकित मिलती हैं, इस पर गुप्तलिपि में 'सरस्वती' लिखा है।

'जैन-सरस्वती' मूर्ति की पहिचान का दो तरीका माना गया है, पहला तरीका यह है कि—स्वयं मूर्ति पर विस्तृत-उल्लेख उत्कीर्ण हो, और दूसरा तरीका यह है कि मूर्ति के साथ तीर्थंकर-प्रतिमायें भी दर्शायी हों ?

ब्रिटिश-म्युजियम में प्रदर्शित सरस्वती-मूर्तियों को पीठ के ऊपर ध्यानस्थ-मुद्रा में पाँच तीर्थंकर प्रतिमायें उकेरी हैं। यह मूर्तियाँ ११-१२वीं सदी की हैं। श्वेत संगमरमर की ये मूर्तियाँ त्रिभंग मुद्रा में चतुर्हता है। इनके दोनों हाथ व पैर टूटे हैं। बाँयें हाथ में अक्षमाला और नीचे वाले में पुस्तक है। इसो म्युजियम में प्रदर्शित दूसरी सरस्वती-मूर्ति सुन्दर है, यह एक अपूर्व वोणा-वादन करतो मूर्ति है। पूर्वभाग में कलहंस है। चतुर्हस्ता देवी के ऊपर के दाँयें हाथ में 'अक्षमाला', बाँयें हाथ में 'पुस्तक' और नीचे वाले दोनों हाथों में वीणा बजा रही है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

'सरस्वती-मूर्तियों' की शृंखला में प्रतिष्ठित सुन्दरतम्-कृति १२वीं सदी की एक ही काल की एक सरीखी मिलती-जुलती दो मूर्तियाँ बीकानेर से प्राप्त हुई हैं। इनमें से एक 'राष्ट्रीय-संग्रहालय' दिल्ली में, तथा दूसरी 'बीकानेर-संग्रहालय' में प्रदर्शित है। देहली वाली श्रेष्ठतम है, यह संगमरमर की चतुर्हस्ता है। ऊपर वाले दाहिने हाथ में श्वेत १६ दलों वाला पुण्डरीक एवं बाँये हाथ में ताडपत्रीय-पुस्तक है, जो काष्ठ-फलक से तीन फेटों में बँधी हुई है। इस हाथ की अन्तिम उँगली खण्डित है। दाहिना हाथ वरद मुद्रा का है, उसमें खण्डित अक्षमाला है। बाँये हाथ में पुष्प-पंक्तियों से सुसज्जित कमण्डलु है। कमण्डलु की नलकी का अग्रभाग टूटा हुआ है।

साँचे में ढला देवी का शरीर त्रिभंग मुद्रा में सोने में सुहागे का कार्य कर रहा है। पद्मासन के पद्म के दोनों ओर से नाल निकले हुएं हैं। आसन पर हंस वाहन अंकित है। देवी के गले में पड़ी त्रिवली ने अंग-सौष्ठव को बढ़ाया है, लम्बी विशाल आँखों में भाव-प्रवणता के कारण वे अर्ध मुकलित हैं। लम्बे गोल हाथों की अँगुलियाँ लम्बी और कलात्मक हैं। बड़े नाखूनों से अँगुलियाँ और भी आकर्षक बन गई हैं। मुख पर सौम्यता एवं नौ योवन की आभा फूटी पड़ती है। हथलियों पर पुष्प और सामुद्रिक-रेखायें अंकित हैं।

'जैन-सरस्वती-प्रतिमायें' आभूषण और सुन्दर बहुवस्त्रों से सुसज्जित होने के कारण जगत-प्रसिद्ध हैं। उपरोक्त सरस्वती-मूर्ति इस तथ्य का अद्वितीय उदाहरण है। इस मूर्ति के मस्तक पर रत्नजड़ित मुकुट सुशोभित है मुकुट से निकल कर केश बड़े ही कलात्मक ढंग से जूड़े के रूप में बाँयी ओर लटक रहे हैं। गले में हारों की पंक्तियाँ हैं, जिनमें फलक हार भी है। गोल हाथों में आभूषण भुजबन्द से शुरू होकर कंगन, चूड़ियाँ अँगुलियों में अँगूठियाँ भी पहिरे हुए हैं। आभूषण ठोस और कलात्मक हैं। मुखाकृति के अनुसार कानों में लटकते मोतियों के झूमके अत्यन्त सुन्दर और मनमोहक हैं। कान के ऊपरी-भाग में मणियुक्त भँवरिया पहिरे हुए हैं।

ऊपर का 'नग्न-शरीर' साँचे में ढला-सा लगता है। अधोभाग में फूलदार किनारे की कसकर सुन्दर साड़ी बँधी हुई है। यह फूलदार साड़ी वनमाला के नीचे से स्पष्ट दीखती है। कमर पर कलात्मक कटिसूत्र है। जिसकी सुन्दर फूँदनी जाँघों पर लटक रही है। लम्बी सुन्दर अँगुलियों से युक्त पैरों में पादजालक पहिरे हुए हैं। साड़ी का कपड़ा अत्यन्त पारदर्शक और जलाधार तथा मूल्यवान है।

राजस्थान के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक-नगर 'लाडनूं' में दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर के तलघर में पश्चिमी ओर श्री नथमल जी सेठी द्वारा नवनिर्मित वेदी में विराजित सरस्वती देवी की मूर्ति अपनी कलात्मकता, भव्यता एवं सौम्यता आदि गुणों में अद्वितीय-मूर्ति कही जा सकती है। किन्तु इस मूर्ति के विषय में बहुत कम लोगों को जानकारी है। अभी तक 'पल्लू' (बीकानेर) से प्राप्त दोनों सरस्वती-मूर्तियाँ ही कला की सर्वश्रेष्ठ निधि गिनी जाती रहीं, किन्तु इस मन्दिर में प्रतिष्ठित जो जैन सरस्वती-मूर्ति है, उसकी भावपूर्ण मोहक मुख मुद्रा एवं पाषाण-मूर्ति-कला की अद्भुत संयोजना देखकर कला विशेषज्ञ इसके कलाकार की सराहना किये

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

बिना संतोषित नहीं हो पाते। डॉ० फूलचन्द जैन (प्रेमी) ने अपनी रचना 'लाडनूँ के जैन-मन्दिर का कला वैभव' में पृष्ठ ६ पर लिखा है कि—'यदि इस मूर्ति को प्रचारित किया जाता तो इसकी गणना 'उत्कृष्ट-कला' के अन्यतम उदाहरणों के रूप में होती।

वास्तव में भारतीय-शिल्प-कला धार्मिकता से ओत-प्रोत है। उसमें आध्यात्मिकता की गहरी छाप है। श्रेष्ठ-मूर्तियों के जितने उदाहरण मिलते हैं उन सभी में एक पवित्र लावण्य और निर्मल धारा प्रवाहित होती दीखती है। यही कारण है कि जब कभी भारतीय-शिल्पकारों ने 'नारी' को अपने शिल्प का जब विषय बनाया, तब अधिकतर उसे 'माँ' के रूप में प्रदर्शित किया है।

वस्तुतः भारतीय-देवियों में 'सरस्वती देवी' को सदा 'माता' का ही यथार्थ रूप प्रदान किया गया है। जैनधर्म में 'जिनवाणी, वाग्देवी, श्रुत-देवता' के रूप में 'सरस्वती देवी' की मान्यता अति प्राचीनकाल से प्रचलित चली आ रही है। 'आगमिक-ज्ञान' की अधिष्ठात्री देवी के रूप में 'सरस्वती' देवी को उसका प्रतीक बनाया गया और उसकी उपासना प्रारम्भ हुई। तथा पवित्र 'आगमिक ज्ञान' को प्रतीक रूप से देने के लिये ज्ञान (श्रुत) की देवी 'सरस्वती' की प्रतिमा का निर्माण हुआ। ज्ञान की ज्योति सब ओर प्रकाशमान होती है, अतः सरस्वती देवी भी ज्ञान रूपी प्रकाश को देती हैं। 'सरस्वती देवी' का श्वेत-वर्णरूप जीवन की पवित्रता के सन्देश का द्योतक है।

'नित्य-नियम पूजा' में 'देव, शास्त्र, गुरु' की पूजा का विधान है, तीनों की स्थापना पृथक्-पृथक् की जाती है, 'सरस्वती देवी' की श्रुत देवता जैनधर्म में सम्बोधित किया गया है, स्थापना में श्रुतदेव से भगवती सम्बोधित हैं—देविश्री श्रुतदेवते भगवति। त्वत्पादपंकेरुह, द्वन्द्वेयामिशितो मुखत्वमपरं भक्त्यामया प्रार्थ्यते।

मातश्चेतसितिष्ठे मे जिनमुखोद्भूते सदा।
त्राहि मां दृग्दानेन मयि प्रसीद भवतीं संपूजयामोऽधुनां॥ ३॥

भावार्थ—हे देवि ! हे श्रुतदेवते, हे भगवति, तेरे चरण-कमलों में भौंरे की तरह मुझे स्नेह है। हे माता ! मेरी प्रार्थना है कि—आप सदा मेरे चित्त में (बसी) रहो। हे जिनमुख से उत्पन्न जिनवाणी। आप सदा मेरी रक्षा करो, और मेरी ओर देखकर मुझ पर प्रसन्न हों। अब मैं आपकी पूजा करता हूँ॥ ३॥

केवली-तीर्थंकर भगवान महावीर के उपदेशों को सुनकर उनके गणधरों ने जो ग्रन्थ रचे उन्हें 'श्रुत' कहते हैं। "गुरु समीपेश्रूयतेरतिश्रुतम्"। अनुवाद-सर्वार्थ, अ० ६ सूत्र १३)। 'श्रुत' का अर्थ है—'सुना हुआ' अर्थात् जो गुरुमुख से सुना गया हो वह 'श्रुत' है। तीर्थंकर महावीर के मुख से उनके उपदेशों को उनके मुख से सुनकर उनके गणधरों ने श्रवण किया और गणधरों के मुख से सुनकर उनके शिष्यों ने और उन शिष्यों से सुनकर प्रशिष्यों ने श्रवण किया।

उपरोक्त प्रकार से श्रवण द्वारा प्रवर्तित होने के कारण ही उसकी संज्ञा 'श्रुत' है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

'श्रुत' की यह परम्परा दीर्घकाल तक इसी प्रकार श्रुति द्वारा प्रवर्तित होती रही। सम्पूर्ण श्रुत के अन्तिम-अधिकारी श्रुत-केवली भद्रबाहु थे (उनके समय में १२ वर्ष का महादुस्काल (दुर्भिक्ष) पड़ा और वही संघभेद का सूत्रपात्र हो गया)।

लाडनूं की सरस्वती देवी के मूर्ति के पादपीठ पर वाहन हंस के नीचे सामने के सपाट भाग पर तीन पंक्तियों का एक स्पष्ट लेख है—लेख नीचे लिखे अनुसार है :—

'संवत १२१९ वैशाख सुदी ३ शुके ।। श्री माथुर संघे ।।
आचार्य श्री अनन्तकीर्ति भक्तश्रेष्ठो **वसुदेव** पत्नी प्राण (**वसुदेव**)
देवी सकुटुम्ब सरस्वतीम् प्रणमति ।। शुभमस्तु ।।

उपरोक्त लेख में—'सरस्वती-मूर्ति' का प्रतिष्ठा-काल, दिगम्बर जैन-परम्परा से सम्बद्ध माथुर-संघ, दानदाता (निर्माता) आदि के विवरणों के साथ 'सरस्वती' सम्बोधन का उल्लेख है। उपरोक्त लेख से ज्ञात होता है कि 'श्रीमाथुर-संघ' के आचार्य श्री अनन्तकीर्ति के भक्त श्रावक सेठ 'वासुदेव' की पत्नी 'आशादेवी' सपरिवार 'सरस्वती देवी' की सभक्ति वन्दना करती है। लेख के अन्त में सभी के 'कल्याण' की कामना की गई है।

'जैन-परम्परा' में विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती के अतिरिक्त अन्य '१६ विद्या देवियों' का वर्णन मिलता है। ग्रन्थों में सरस्वती देवी के पर्यायवाची नाम भी वर्णित मिलते हैं :—"वाक्, ब्राह्मी, भारती, गौ, गो, वाणी, भाषा, सरस्वती और श्रुतदेवी" आदि। इन नामों के आधार पर श्री 'बालचन्द्र' जैन ने अपनी रची पुस्तक 'जैन-प्रतिमा-विज्ञान' (पृ० ५४) पर लिखा है कि—जैनों की विद्या देवियाँ वस्तुतः अपने नाम के अनुसार 'वाणी' की विभिन्न प्रकृतियों के कल्पित मूर्तरूप हैं।

विद्या देवियों का स्वरूप बतलाते हुए—प्रायः सभी ग्रन्थों में उन्हें ज्ञान से संयुक्त बतलाया है, इन विद्यादेवियों की 'लोक-प्रियता' श्वेताम्बरों तक ही सीमित मान्य थी। 'उत्तर-भारत में जैन प्रतिमा-विज्ञान' पृ० ८१-८४, जैन इंस्टीट्यूट, वाराणसी ५, अभी तक लोगों में प्रचलित धारणा को लाडनूँ के मन्दिर में स्थापित 'सरस्वती देवी' के मूर्ति के पार्श्व में १६ विद्या देवियों से मूर्ताङ्कान शिलापट्ट से उस धारणा का निराकरण होकर इस उदाहरण से इस तथ्य प्रगट हो जाता है कि—'दिगम्बर-परम्परा' में भी इन १६ विद्या देवियों की आराधना का प्राचीनकाल से प्रचलन था।

ये विद्या देवियाँ मूलतः तान्त्रिक देवियाँ हैं। १६ महाविद्याओं से सम्बन्धित प्रारम्भिक जैन-ग्रन्थ 'वप्पभट्टसूरि' कृत 'चतुर्विंशतिका' (७४३-८३८ ई०) है। १६ विद्यादेवियों के नाम दिगम्बर परम्परा में इस प्रकार हैं—१. रोहिणी, २. प्रज्ञप्ति, ३. वज्रशृंखला, ४. वज्रांकुशा, ५. जाम्बूनदा, ६. पुरुषदत्ता, ७. काली, ८. महाकाली, ९. गौरी, १०. गांधारी, ११. ज्वालामालिनी, १२. मानसी, १३. वैराही, १४. अच्युता, १५. मानसी और १६वीं महामानसी।

श्वेताम्बर-परम्परा में कुछ देवियों के नामों में विभिन्नता है। जैसे—५वीं का दिगम्बर परम्परा में ५वीं जाम्बूनदा (श्वे० प० में) चक्रेश्वरी या अप्रतिचक्रा। ६वीं का नरदत्ता

५

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

भी है। ७वीं का कालिका। ११वीं का सर्वास्थ महाज्वाला या ज्वाला। १३वीं का वैरोट्या। १४वीं का अच्छुप्ता मिलता है।

लाडनूँ की इस सरस्वती मन्दिर में एक पाषाण-फलक पर उत्कीर्ण इन १६ विद्या देवियों की मूर्तियों का अनुमानित निर्माण काल १२वीं शती माना गया है। इस पाषाण-फलक की रचना (५२×४० से० मी०) तोरण-शैली के आधार पर हुई है। दोनों ओर से कुछ खण्ड-युक्त खम्बे हैं। दोनों खम्बों के अग्रभाग में निर्मित राधिकाओं (वेदिकाओं) में, और अर्ध-वृत्ताकार घेरे की मध्यवर्ती राधिका में पद्मासन मुद्रा में जिन-प्रतिमायें अंकित हैं। मध्य के शीर्षस्थ इस राधिका के दोनों ओर और अर्थात् चौड़े अर्धवृत्ताकार वाले भाग में विभिन्न वाद्य यन्त्र लिये नृत्य मुद्रा में पाँच-पाँच अप्सरायें अंकित हैं। सोलह विद्या देवियाँ चार पंक्तियों में चार-चार की संख्या में प्रतिष्ठित हैं। सभी पद्मासन मुद्रा में शास्त्रीय-परम्परानुसार अपने-अपने यथायोग्य आयुधों, ध्रुवीकों एवं वाहनों से युक्त है। सभी की मुख-मुद्रा समान रूप से गम्भीर एवं शान्त है। देवियों की प्रथम पंक्ति के ऊपर बीचों-बीचों तथा उनके दोनों ओर एक-एक 'जिन प्रतिमा' पद्मासन मुद्रा में अवस्थित हैं। दोनों खाचों के बगल से हाथियों के शीर्ष (सूँड़युक्त मस्तक) भाग अंकित हैं। बलिष्ठ घोड़े भी खड़े हैं।

उपरोक्त पाषाण-फलक विशेष रूप से इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि—क्योंकि छः जिन प्रतिमाओं के साथ सोलह विद्या देवियों के एक साथ अंकन की उधारण परम्परा में सम्भवतः अकेला और दुर्लभ है। ऐसा ही एक २४ यक्षियों का एक अलभ्य शिलापट्ट प्रयाग-पुरातत्त्व-संग्रहालय में प्रदर्शित है, जिसमें मूल-नायिका के रूप में २२वें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ की शासन-पद्धति अम्बिका देवी मध्य में और अन्य २३ तीर्थंकर की शासन यक्षियाँ चारों ओर हैं। यह शिलापट्ट जैनधर्म के पुरातत्त्व अवशेषों की एक अनुपम अलभ्य-निधि है।

●

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

स्वयंभू-काव्य में छंद : एक विश्लेषण

—डॉ० आदित्य प्रचण्डिया 'दीति' डी० लिट्०

भाषा अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। गद्य और पद्य भाषा के दो स्थूल रूप हैं। गद्य व्याकरण से शासित होता है और पद्य पिंगल से अनुप्राणित।[१] अक्षर, अक्षरों की संख्या एवं क्रम, मात्रा, मात्रा-गणना तथा यति-गति आदि से सम्बन्धित विशिष्ट नियमों से नियोजित पद्य रचना 'छंद' कहलाती है।[२] छंद वास्तव में स्वर की लयात्मक गति है। नाद की गतियाँ जब लयमय बनती हैं तब छंद जन्म लेता है। गीत यदि कविता है तो छन्द उस गीत की तान है। संगीत तथा छन्द दोनों की वास्तविक आत्मा 'लय' है।[३] 'लय' की अणिमा और महिमा ही छन्द है।[४] छन्द रसात्मकता का एक आवश्यक तत्त्व है। वह काव्य का अनिवार्य माध्यम है।[५] ज्ञान की अवनति के लिए छन्द को वेदागों में गृहीत किया गया है। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश इन तीनों भाषाओं की अपनी महनीय विशिष्टताएँ हैं। संस्कृत यदि वर्णिक छन्दों के लिए प्रसिद्ध है तो प्राकृत और अपभ्रंश मात्रिक छन्दों के लिए विख्यात हैं। अपभ्रंश काव्यधारा छन्द की दृष्टि से अधिक समृद्ध है। अपभ्रंश छन्दों के स्रोत दो हैं—एक तो विभिन्न छन्द शास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत अपभ्रंश छन्दों का विश्लेषण और दूसरे अपभ्रंश काव्य में प्रयुक्त छन्दों का अनुशीलन।[६] अपभ्रंश काव्यकार छन्द-प्रयोग में सजग रहे हैं। लोक-भाषा की गतिशीलता को बनाये रखने के लिए यह आवश्यक भी था। श्री अल्सफोर्ड ने अपभ्रंश छन्द के दो भेद किये हैं—गणप्रधान और मात्रा प्रधान। उन्होंने मात्रा प्रधान छन्द के पाँच भेद किए हैं—(i) चार पाद का लयात्मक छन्द (ii) दोहा आकार के छन्द (iii) केवल लयवाले छन्द (iv) मिश्रित छन्द (v) घत्ता के आकार के छन्द।[७] इसी प्रकार प्रयोग की दृष्टि से भी भेदों की कल्पना की जा सकती है—(i) मुक्तक रचनाओं में प्रयुक्त होने वाले छन्द (ii) कड़वक रचना में प्रयुक्त छन्द (iii) कड़वक के आदि अन्त में प्रयुक्त छन्द। जिस प्रकार श्लोक संस्कृत का और गाहा प्राकृत का अपना छन्द कहा जाता है उसी प्रकार दोहा अपभ्रंश का अपना मुख्य छन्द है। ईसा की सातवीं शताब्दी से अपभ्रंश में इसका प्रचलन माना जाता है।[८] डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी दोहे को अपभ्रंश कवियों का प्रिय छन्द स्वीकारते हैं।[९] दोहा मुक्तक काव्य के लिए उपयुक्त छंद है तो प्रबन्ध काव्य के लिए चौपाई की उपयुक्तता निर्विवाद रूप से स्वीकृत है। चौपाई भी अपभ्रंश की देन है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने चौपाई का सम्बन्ध अपभ्रंश के अलिल्लाह छन्द से बताया है।[१०] जहाँ तक अपभ्रंश छन्दों की ऐतिहासिक विकास रेखा खींचने का सन्दर्भ है तो इसके लिए 'स्वयम्भूच्छन्द' और 'छन्दोनुशासन' का नामोल्लेख महत्त्व का है। 'स्वयम्भूच्छन्द'[११] के रचयिता स्वयम्भू अपभ्रंश के आद्य कवि-कोविद हैं। वह छन्दशास्त्र और व्याकरण के भी प्रकाण्ड पण्डित थे। छन्दचूड़ामणि, विजयपरिशेष और कविराज धवल इनके विरुद्ध थे।[१२] 'स्वयम्भूच्छन्द' ग्रंथ के प्रारम्भ के तीन अध्यायों में प्राकृत के वर्णवृत्तों का और

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पाँच शेष अध्यायों में अपभ्रंश के छन्दों का विवेचन किया है। साथ ही छन्दों के उदाहरण भी पूर्व कवियों के ग्रंथों से चुनकर दिए गए हैं। इस कृति के अन्तिम अध्याय में दोहा, अडिल्ला, पद्धड़िया आदि छन्दों के स्वोपज्ञ उदाहरण दिए गए हैं। अरिल्ला/अडिल्ला छन्द का सर्वप्रथम उल्लेख करने वाले स्वयम्भू हैं।[13]

स्वयम्भू रचित 'पउमचरिउ' और रिट्ठणेमि चरिउ' के छन्द विधान का विस्तृत अध्ययन डॉ० भायाणी ने किया है। 'पउमचरिउ' के तृतीय खण्ड की भूमिका पृष्ठ ७८ में उन्होंने ग्रंथों के प्रत्येक कड़वक के प्रारम्भ, मध्य और अन्त में प्रयुक्त छन्दों का पूरा विवरण प्रस्तुत कर दिया है। कड़वकबद्ध शैली में अपभ्रंश काव्य का पुरातन निदर्शन स्वयम्भू का है। लेकिन स्वयम्भू स्वीकारते हैं कि पद्धडिया छन्द उन्हें चतुर्मुख से मिला—

छन्दडिय दुवइ धुवएहि जडिय, चउमुहेण समप्पिय पद्धडिय

(रिट्ठणेमिचरिउ १.२)

हाँलाकि चतुर्मुख की कोई रचना सुलभ नहीं है। 'पउमचरिउ' और 'रिट्ठणेमि-चरिउ' के कड़वकों के यमक में अर्थात् प्रारम्भ और अन्त के मध्यवाले मुख्यभाग में व्यवहृत छन्दों में पद्धडिया, वदनक और पारणक का प्राधान्य है। कड़वक को प्रारम्भ करने वाले छन्दों में मंजरी, हेला, द्विपदी, सालभंजिका, कामलेखा, मात्रा मंजरी, दोहा आदि विशेषण रूप से प्रयुक्त हुए हैं—

तेरह जाइव कंडे कुरु कंडे कूणवीस संधीओ
तह सट्ठि जुज्झय कंडे एवं वाणउदि संधीओ
छव्वरिसाइं तिमासा एयारस वासरा सयंभुस्स
वाणवइ-संधि करणे बोलीणो इत्तिओ कालो

(पउमचरिउ, ९२ सन्धि की समाप्ति)

घत्ता या कड़वक के अन्त के छन्दों में रत्नावली, केतकीकुसुम, कामिनीहास, कांचन-माला, अभिनव वसन्तश्री, त्रिवली-तरंगक, प्रेमविलास, अनंगलतिका, मन्मथतिलक आदि छन्दों की अतिरेकता है। इनके अतिरिक्त कड़वकों के आदि, अन्त और मध्य में अनेक अन्य छन्दों का प्रयोग भी स्वयम्भू ने स्थान-स्थान पर किया है। छन्दों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

अडिल्ला—(अन्त में दो लघु का विधान है)

जीव तावहिं जाव जलु गञ्जहि। चंदणु अगरु गफेडहिं अङ्गहिं।
घोडा वाहहिं वर अतुरङ्गइं। दारहिं रमहिं जे सुठ्ठुवि चंकइ॥

उपहासिणो—

अङ्कुङ्कय-काल-विकाल-सेहरा। तरल-सील-वलि-वल-पओहरा

(पउम० ६०.६.८)

घत्ता—यह छन्द द्विपदी घत्ता कहलाता है और दो ही पंक्तियों में लिखा जाता है। इसके कई भेद हैं)।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

भणइ दसाणणु भाइ सुणि जाणमि पेक्खमिणरयहों सङ्कमि ।
णवर सरीरे वसन्ताइं पञ्चिन्दियइँ जिणेवि ण सक्कमि ।।

(पउम० ५७.२.११)

पट्टणु पइसरियं जं धवल-धरालंकरियउ ।
केण वि कारणेण णं सग्ग खंडु ओयरियउ ।।

(रिट्ठणेमि० २८.४)

फरिसेण विणासु मत्त-गइन्दु गउ ।
जो सेवइ पञ्च तहों उत्तारु कउ ।।

(पउम० ७३.१२.९)

जम्भेट्टिया—(दुवई छंद)

पढम-विसन्तहिं, लङ्क णिहालिय ।
णाइँ विलासिणि, कुसुमोमालिय ।।

(पउम० ७२.१.२)

तोटक—(१२ वर्णों का छन्द जिसमें चार सगण होते हैं) सगण = ।।ऽ

जमणाय-समुग्गणिणाय-लुली । हल-हाल-हलाउह-हेल-हुली ।।

(पउम० ५९.६.८)

तोमरो—(१२ मात्राओं का छन्द, अन्त में गुरु-लघु (ऽ।) का विधान है) ।

कुद्ध जुद्ध-लुद्ध के वि । णिग्गया सु-सण्णहेवि ।।

(पउम० ५९.२.९)

दुवइ—(अपभ्रंश काव्यों की सन्धि के प्रारम्भ में यह दो पादों में प्रयुक्त और गीति-काव्य में चार पादों में)

तेहिं वि वासुएव-वलएवहि पहरिसिएहिं तक्खणे ।
हक्कारेवि पासु सम्माणें वि, वइसारिउ वरासणे ।।

(पउम० ७०.७.१)

दोधकं—(यह तीन 'भगण' और दो गुरु का वृत्त है, इसका अन्य नाम बन्धु है ।)

दण्डिय जेण मणिन्दिय-छत्रं, णोमि जिणोत्तम मम्बुज-णेत्तं

(पउम० ७१.११.८)

ध्रुवक—दूआगमणें परोप्परु कुद्धइँ जय-सिरि-रामालिङ्गण-लुद्धइँ ।
किय-कलयलइँ समुब्भिय-चिन्धइँ रामण-राम-वलइँ-सण्णद्धइँ ।।

(पउम० ५९)

माराच—(यह वृत्त दो नगण और चार रगण का है, इसे महामालिका भी कहते हैं) ।

सुमालि-मच्चु-भीसणा । दुरन्त-दुद्दरीसणा ।

(पउम० ५९.७.९)

पद्धडिया—(सोलह मात्राओं का छन्द)

पुप्फासवाण-पुप्फक्खयरा । फुल्लोअर-फुल्लन्धुअ-भमरा ।।

(पउम० ५९.९.२)

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

परभणी—(१२ मात्राओं का छन्द)

परोवरस्स पत्तया। मम्यबु-सित्त-गयत्तया।

(पउम० १७.१६.२)

परियन्वियं—का वि णाहे णवकारु करेइ। को वि वीरु रण-दिक्खलएइ।

(पउम० ५९.५.९)

मत्तमातंग—(इसमें नौ रगण होते हैं। साधारण दंडक का भेद विशेष)।

जिणुजयकारें वि चडिउ विहीसणु। जो भय-भीय-जीव-मम्मी-सणु।

(पउम० ६०.४.८)

मत्ता—(इसमें ५ पाद होते हैं, इसे रड्डा और राजसेना भी कहते हैं)

जाव रावणु जाइ णिय-गेहु।

अन्तेउरु पइसरइ करइ रयणि सइँ भोग्गेँ आयरु।

ता ताडिय चउ-पहरि उअय-सिहरें उट्ठिउ दिवायरु॥

(पउम० ७४.१)

मदनावतार—(यह अन्तर समाचतुष्पदी के अन्तर्गत है। इसे कामिनीमोहन भी कहते हैं)।

पत्थउप्पित्थ—पत्थार-दप्पुद्धरा। पिहुल-पिहुकाय-भूभङ्ग-उब्भुङ्गुरा।

(पउम० ६०.५.८)

मागध प्रत्यधिका

जं सेण-सणद्धएँ दिट्ठाए। तं लक्खणे वि आलुट्ठाए।

(पउम० ६०.१.९)

भुजंगप्रयात—(यह चार यगण का भुजंगप्रयातवृत्त है, यह उर्दू के बहर से मिलता है।)

अमाया-विरुवं पि विक्खिण्ण-सीसं सया-आगमिल्लंपि णिच्चं अदीसं।

(पउम० ७१.११.२४)

रयडा

जो जस-लेहडु एक्कल-वीरु। सो मारुइ रोमाञ्चिय-सरीरु॥

(पउम० ६०.३.८)

हेला

सङ्ग-पसङ्ग-रत्त भिण्णञ्जण-प्पहङ्गा

पुक्खर-पुप्फचूड-घण्टाउह-घिहङ्गा

(पउम० ५९.९.१)

इसके अतिरिक्त कामिनीमोहन (रिट्ठणेमिचरिउ २६.४) नाराचक (रिट्ठणेमि २९.७) तथा चारु (पउमचरिउ ४८.११) का स्वयंभू-काव्य में व्यवहार बखूबी हुआ है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

काव्य रचना में एकरसता का परिहार छन्दों के वैविध्यपूर्ण प्रयोग से सम्भव है। छन्द चयन में सर्वोत्तम दृष्टिकोण यह है कि छन्दों में परिवर्तन इस प्रकार किया जाय कि काव्य में एकरसता उत्पन्न न हो और भाव, विचार, घटना या विषय के अनुकूल छन्द का प्रयोग होता चले। स्वयंभू इस दृष्टि से सफल हैं। कथात्मक अंश के लिए स्वयंभू ने पद्धडिया, पाराणक या वदनक छन्द का प्रयोग किया है तो युद्ध वर्णन में काव्यकार ने प्रायः भुजङ्ग-प्रयात से काम लिया है जो इसके लिए उपयुक्त ठहरता है। स्वयंभू की छन्द योजना की यह विशेषता है कि वह विषयानुसार परिवर्तित होती रहती है। जैसे स्तुति, द्वन्द्वयुद्ध, लीला वर्णन, प्रेम-प्रसंग में छोटे छन्दों का व्यवहार हुआ है। पहाड़, युद्ध, नगर वर्णन आदि में यथासम्भव बड़े छन्दों का प्रयोग हुआ है। अपभ्रंश छन्दों में सङ्गीत का पुट स्वयंभू ने दिया है। 'पउमचरिउ' की ४९ और ५६ के पहले कड़वक के छन्दों की गति क्रमशः सङ्गीत के स्वर और वाद्यों के लय पर हो चलती है। वस्तुतः ये नृत्यगीत हैं। छन्द की दृष्टि से स्वयंभू का काव्य समृद्ध है और यह समृद्धि छन्दों की अनेकता और विविधता से अनुप्राणित है। मानसकार तुलसी को तथा पद्मावत-प्रणेता जायसी को छन्द योजना की प्रेरणा स्वयंभू-काव्य से मिली यह अत्युक्ति नहीं है।

सन्दर्भ

१. काव्यांग कौमुदी, तृतीयकला, पंडित विश्वनाथ मिश्र, पृ० २१२।

२. हिन्दी साहित्यकोश, प्रथम भाग, पृ० २९०।

३. प्राकृत पैंगलम्, भाग २, डॉ० भोलाशंकर व्यास, पृ० २९१।

४. जैन हिन्दो काव्य में छन्दो योजना, आदित्य प्रचण्डिया दीति, पृ० २।

५. अरस्तू का काव्यशास्त्र, भूमिका, डॉ० नगेन्द्र, पृ० २।

६. अपभ्रंश भाषा और साहित्य, डॉ० देवेन्द्र कुमार जैन, पृ० २३१।

७. अपभ्रंश स्टेडेन, १९३७, पृ० ४६।

८. डा० विनयमोहन भट्टाचार्य जर्नल रायल एशियाटिक सोसायटी आव बंगाल, खंड ८२ (१), पृ० २४९।

९. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ९२।

१०. हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० ५९।

११. कतिपय विज्ञजन 'स्वयंभूच्छंद' रचना स्वयंभू की नहीं स्वीकारते पर ऐसा इस निबन्ध का लेखक नहीं स्वीकारता।

१२. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, खण्ड ४, डा० नेमीचन्द्र शास्त्री, पृ० ९६।

१३. डा० हरिवल्लभभायाणी, **Sandesarasaka study, Metres, P. 51.**

मंगलकलश

३९४, सर्वोदय नगर,

आगरा रोड, अलीगढ़

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जैन-संस्कृत-वाङ्मय में महामात्य वस्तुपाल

—डॉ० केशव प्रसाद गुप्त

जैन-संस्कृत-वाङ्मय जहाँ एक ओर जैनधर्म के विविध रहस्यों को उद्घाटित करने के लिए तथा मानव-समाज को सुकृत्यों एवं आत्म-चिन्तन की ओर उन्मुख करने के लिए जैनाराध्य तीर्थंकरों के जीवन-चरितों को प्रस्तुत करता है, वहीं दूसरी ओर वह विभिन्न ऐतिहासिक महापुरुषों की जीवन-गाथा एवं उनके कृत्यों का यथार्थ और प्रामाणिक विवरण देकर भारतीय इतिहास की जानकारी के लिए प्रभूत सामग्री भी उपस्थित करता है। इस दृष्टि से गुजरात के मध्यकालीन इतिहास के ज्ञान के लिए जैन-स्रोतों का योगदान अविस्मरणीय कहा जा सकता है। इतिहासकार आज भी जैन-ग्रन्थों की पंक्तियों को प्रमाणस्वरूप सहर्ष स्वीकार करते हैं। तेरहवीं शताब्दी में उत्पन्न इतिहास-प्रसिद्ध महामात्य वस्तुपाल की कीर्ति-गाथा कई जैन-कृतियों में उपलब्ध होती है, जिससे उसके जीवन से सम्बन्धित अनेक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक व धार्मिक कृत्यों का सविस्तर परिचय प्राप्त होता है।

महामात्य वस्तुपाल का जन्म गुजरात में वणिक् वर्ण से सम्बन्धित सुप्रसिद्ध प्राग्वाट वंश में हुआ था।[1] इसका अपरनाम 'वसन्तपाल' या 'वसन्त' था।[2] वस्तुपाल ने गुजरात के चौलुक्य वंशी नरेश वीर धवल के महामात्य पद को अलंकृत किया था। कुशल प्रशासनिक क्षमता के साथ-साथ जैनधर्म के प्रति उसकी महती आस्था एवं निष्ठा थी। जैन-धर्म के प्रचार व प्रसार के लिए उसने कई मन्दिरों का निर्माण व जीर्णोद्धार कराया तथा कई तीर्थ यात्राओं का आयोजन भी कराया। सुप्रसिद्ध दिलवाड़ा का मन्दिर वस्तुपाल की कीर्ति-स्तम्भ स्वरूप आज भी विद्यमान है।

महामात्य वस्तुपाल के जीवन चरित को लक्ष्य करके उसके जीवन काल में ही अनेक कवियों ने छोटी-बड़ी रचनाएँ करना आरम्भ कर दिया था। बाद में उनकी संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गयी। इनमें कुछ ऐसी कृतियाँ हैं, जिनमें वस्तुपाल की जीवन-कथा विस्तार से वर्णित है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी ग्रन्थ हैं, जिनके कुछ ही अंशों में वस्तुपाल-विषयक चर्चा की गयी है; फिर भी ऐतिहासिक दृष्टि से इनके महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता है। वस्तुपाल के जीवन चरित पर प्रकाश डालने वाली रचनाओं को निम्न वर्गों में प्रस्तुत किया जा सकता है—

---

१. बालचन्द्रसूरि वसन्तविलास, सर्ग–३, श्लोक ५७।

२. ख्यातं प्राप वसन्तपाल इति यो नाम द्वितीयं मुदा।
वस्तुपाल, नरनारायणानन्द, सर्ग–१६, श्लोक ३०।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

१. महाकाव्य ।
२. प्रशस्तियाँ ।
३. प्रबन्धादि अन्य ग्रन्थ ।

१. महाकाव्य

महामात्य वस्तुपाल से सम्बन्धित जैन-संस्कृत-कृतियों में महाकाव्यों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है, क्योंकि इनके द्वारा वस्तुपाल के सम्बन्ध में विस्तार से जानकारी दी गयी है। कुछ महाकाव्यों की पूरी कथावस्तु वस्तुपाल पर ही आधारित है। इसके अतिरिक्त कुछ महाकाव्यों के केवल प्रशस्ति सर्ग में ही वस्तुपाल का परिचय और उसका यशोगान किया गया है। सम्बन्धित महाकाव्य निम्नलिखित हैं—

नरनारायणानन्द महाकाव्य :—महामात्य वस्तुपाल स्वयं एक उच्चकोटि का कवि और कवियों का आश्रयदाता भी था।[१] नरनारायणानन्द महाकाव्य का प्रणयन स्वयं महामात्य वस्तुपाल ने किया है। इसमें कुल १६ सर्ग हैं, जिनमें अर्जुन द्वारा सुभद्रा हरण करने से लेकर उन दोनों के विवाह तक की कथा वर्णित है। महाकाव्य का अन्तिम सर्ग प्रशस्ति सर्ग है, जिसमें कवि वस्तुपाल का परिचय दिया गया है। इस सर्ग का प्रारम्भ राजधानी अणहिलवाड़ पाटन के वर्णन से किया गया है।[२] इसके बाद प्राग्वाट वंश के चण्डप, चण्डप्रसाद, सोम, अश्वराज, उसकी पत्नी कुमार देवी तथा उन दोनों के पुत्रों—लूणिग, वस्तुपाल व तेजपाल—का क्रमबद्ध परिचय दिया गया है। इस महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्त में वस्तुपाल की कीर्ति सम्बन्धी श्लोक भी दिये गये हैं। दशम और षोडश सर्गों के अन्त में दो-दो श्लोक तथा शेष सर्गों के अन्त में एक-एक श्लोक प्राप्त होते हैं। इस प्रकार महाकाव्य का अन्तिम सर्ग पूर्णतया वस्तुपाल की जीवन-कथा से सम्बन्धित है।

धर्माभ्युदय महाकाव्य :—प्रस्तुत महाकाव्य के रचयिता उदयप्रभसूरि हैं। यद्यपि इसमें कहीं भी रचनाकाल का उल्लेख नहीं किया गया है, फिर भी इसकी जो सबसे प्राचीन प्रति प्राप्त हुई है, उसे वि० सं० १२९० में स्वयं वस्तुपाल ने लिखा था।[३] इस महाकाव्य में कुल १५ सर्ग हैं, जिनमें महामात्य वस्तुपाल द्वारा की गयी संघ-यात्रा को लक्ष्य बनाकर अनेक धार्मिक कथाओं को प्रस्तुत किया गया है। इसके प्रथम सर्ग में वस्तुपाल की वंश परम्परा तथा उसके मंत्री बनने का वर्णन किया गया है और अन्तिम सर्ग में वस्तुपाल की संघ यात्रा का ऐतिहासिक विवरण विस्तार से दिया गया है।

सुरथोत्सव महाकाव्य :—प्रस्तुत महाकाव्य १५ सर्गों में उपनिबद्ध है। इसके रचयिता महाकवि सोमेश्वर हैं। इसमें मारकण्डेय पुराण में उल्लिखित राजा सुरथ की कथा वर्णित है।

---

१. डॉ० भोगीलाल सांडेसरा, महामात्य वस्तुपाल का साहित्य मंडल, पृ० ६० ।
२. नरनारायणानन्द, सर्ग-१६, श्लोक-१ ।
३. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-६, पृ० २५१ ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

महाकाव्य का अन्तिम सर्ग कवि-प्रशस्ति से सम्बन्धित है । इस सर्ग में चौलुक्य नरेशों, उनकी विजयों, धार्मिक कृत्यों तथा उनके आश्रित कवियों एवं महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों की चर्चा की गयी है । सर्ग के अन्तिम भाग में महामात्य वस्तुपाल और उसके पूर्वजों का परिचय देकर वस्तुपाल की कीर्ति का प्रभावशाली चित्रण किया गया है । वस्तुतः महाकवि सोमेश्वर वस्तुपाल के दरबारी कवियों में प्रमुख थे ।[1] इसीलिए वस्तुपाल की कीर्ति का उल्लेख किया जाना स्वाभाविक ही था ।

कीर्तिकौमुदी महाकाव्य :—महाकवि सोमेश्वर विरचित कीर्ति-कौमुदी एक ऐतिहासिक महाकाव्य है, जिसमें कुल ९ सर्ग हैं । इस महाकाव्य में वस्तुपाल का जीवन चरित विस्तार से वर्णित है । इसके प्रथम सर्ग में कवि ने चौलुक्यों की राजधानी 'पाटन' नगर का वर्णन किया है । इसके द्वितीय सर्ग में मूलराज से लेकर भीम द्वितीय तक सभी चौलुक्य नरेशों की कीर्ति एवं विजयों की चर्चा की गयी हैं । इसके बाद बघेला लवणप्रसाद के स्वप्न का वर्णन है । उसे स्वप्न में गुजरात की राज्य लक्ष्मी दिखायी पड़ती, जो अपने पूर्व वैभव एवं तत्कालीन नष्टप्राय गौरव को प्रकट करती हैं । स्वप्नोपरान्त लवण प्रसाद अपने पुत्र वीरधवल तथा पुरोहित को कवि के पास भेजता है । कवि स्वप्न के तात्पर्य को समझाकर योग्य मंत्रियों के चयन हेतु संस्तुति करता है । तृतीय सर्ग में वस्तुपाल के पूर्वजों का वर्णन है । चतुर्थ सर्ग में वस्तुपाल व तेजपाल की मंत्री पद पर नियुक्ति और पंचम सर्ग में वस्तुपाल को स्तम्भ तीर्थ का मण्डलाधिप बनाने तथा दक्षिण के आक्रमणों को रोकने की घटना का उल्लेख है । छठें सर्ग में लाट देश के राजा शंख पर वस्तुपाल की विजय तथा विजयोत्सव का वर्णन है । सातवें और आठवें सर्ग में काव्य परम्परा का निर्वाह किया गया है । महाकाव्य के अन्तिम सर्ग में वस्तुपाल की शत्रुञ्जय, गिरिनार व प्रभास तीर्थों की यात्राओं का भव्य वर्णन है । इस प्रकार लघु-कलेवर का होकर भी यह महाकाव्य वस्तुपाल के जीवन सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी प्रदान करता है ।

सुकृतसंकीर्तन महाकाव्य :—सुकृतसंकीर्तन महाकाव्य अरिसिंह ठक्कुर की एक प्रसिद्ध रचना है । इसमें वस्तुपाल के धार्मिक एवं लोकप्रिय कार्यों का विशेष रूप से वर्णन किया गया है । ग्यारह सर्गों में उपनिबद्ध इस महाकाव्य के प्रथम सर्ग में अणहिलवाड़ (पाटन) नगर तथा चापोत्कट (चावड़ा) वंश के राजाओं का वर्णन है । द्वितीय सर्ग में चौलुक्य वंश का वर्णन किया गया है । तृतीय सर्ग में भीम द्वारा बघेला लवण प्रसाद को सर्वेश्वर पद पर तथा उसके पुत्र वीरधवल को युवराज पद पर और वस्तुपाल व तेजपाल की मन्त्रिपद पर नियुक्ति की चर्चा की गयी है ।[2] महाकाव्य के चौथे से ग्यारहवें सर्ग तक वस्तुपाल के सुकृत्यों, यात्राओं एवं धार्मिक वैभव का विस्तार से वर्णन किया गया है । इस महाकाव्य की रचना वस्तुपाल के जीवन काल में ही की गयी है ।

---

१. डॉ० भोगीलाल सांडेसरा, महामात्य वस्तुपाल का साहित्य मण्डल, पृ० ६०-६१ ।

२. गृहाण विग्रहोदग्र सर्वेश्वर पदं मम ।
युवराजोऽस्तु मे वीरधवलो धवलोगुणैः ।। सुकृतसंकीर्तन, सर्ग-३, श्लोक ३९ ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

वसन्तीविलास महाकाव्य—कवि बालचन्द्रसूरि ने वस्तुपाल की मृत्यु के उपरान्त उसके पुत्र जैत्रसिंह के अनुरोध पर वसन्तविलास महाकाव्य की रचना की है।[1] इसका नामकरण वस्तुपाल के अपरनाम 'वसन्तपाल' के आधार पर किया गया है। यह एक वीररस प्रधान ऐतिहासिक महाकाव्य है, जिसमें कुल १४ सर्ग हैं। महाकाव्य का प्रथम सर्ग प्रशस्ति सर्ग है। द्वितीय सर्ग में चौलुक्यों की राजधानी अणहिलवाड़ पाटन का वर्णन है। तृतीय सर्ग में चौलुक्य वंश की उत्पत्ति के पश्चात् मूलराज प्रथम से लेकर भीम द्वितीय तक के शासकों के शौर्य व कीर्त्ति का क्रमबद्ध वर्णन है। इसके बाद अर्णोराज, लवणप्रसाद तथा वीरधवल के पराक्रम का उल्लेख है। इसी सर्ग में वस्तुपाल के पूर्वजों—चण्डप, चण्डप्रसाद, सोम, अश्वराज तथा उसकी पत्नी कुमारदेवी के वर्णन के पश्चात् वस्तुपाल व तेजपाल की मंत्रिपद पर नियुक्ति का विवरण दिया गया है। चौथे सर्ग में मन्त्रि-गुण-वर्णन तथा वस्तुपाल द्वारा स्तम्भ-तीर्थ के मण्डलाधिप का कार्यभार ग्रहण करने का वर्णन है। पाँचवें सर्ग में वस्तुपाल और शंख के युद्ध तथा शंख की पराजय का वर्णन किया गया है। इसके बाद छठें से लेकर आठवें सर्ग तक महाकाव्य की परम्परा का निर्वाह किया गया है।

नवम सर्ग में रात्रि में निद्रमग्न वस्तुपाल लँगड़ाते हुए धर्म को स्वप्न में देखता है। धर्म वस्तुपाल से अपनी व्यथा का वर्णन करके उसे तीर्थयात्रा करने के लिए प्रेरित करता है। दशवें सर्ग से तेरहवें सर्ग तक वस्तुपाल की तीर्थयात्रा का विस्तृत वर्णन है। इसमें विमलगिरि, प्रभासतीर्थ व रैवतक गिरि की यात्राओं का मनोरम विवरण प्रस्तुत किया गया है। अन्तिम सर्ग में पहले वस्तुपाल के धार्मिक कृत्यों की चर्चा की गयी है और बाद में नाटकीय ढंग से वस्तुपाल की मृत्यु[2] (वि० सं० १२९६, माघ, कृष्णा, पंचमी, रविवार, प्रातःकाल) का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। इस प्रकार वसन्तविलास महाकाव्य वस्तुपाल के जीवन चरित को लक्ष्य करके लिखे गये सभी महाकाव्यों में श्रेष्ठ है।

२. प्रशस्तियाँ :

महामात्य वस्तुपाल के धार्मिक कृत्यों, उसके प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं जैनधर्म के प्रचार व प्रसार सम्बन्धी कार्यों को लक्ष्य करके लिखी गयी कई प्रशस्तियाँ भी प्राप्त होती हैं, जिनमें अधिकांश की रचना उसके जीवन काल में ही हुई थी। इन प्रशस्तियों में कुछ तो ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि इनमें चौलुक्य काल से लेकर वस्तुपाल पर्यन्त विविध ऐतिहासिक एवं धार्मिक घटनाओं का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। महत्त्वपूर्ण प्रशस्तियाँ इस प्रकार हैं—

सुकृतकीर्त्तिकल्लोलिनी—धर्माभ्युदय महाकाव्य के रचयिता उदयप्रभसूरि विरचित इस

---

१. श्री जैत्रसिंहस्य मनोविनोदकृते काव्यमिदमुदीरयते ह।

वसन्तविलास, सर्ग १ श्लोक ७५।

२. वही; सर्ग-१४, श्लोक ३७।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

प्रशस्ति में कुल १७९ श्लोक हैं। यह प्रशस्ति शत्रुंजय पर्वत पर स्थित आदिनाथ के मन्दिर में शिलापट्ट पर उत्कीर्ण कराने के लिए लिखी गयी थी।[1]

परम्परानुसार मंगलाचरण के पश्चात् इस प्रशस्ति के श्लोक ९ से १८ तक चावड़ा वंश के राजाओं के शौर्य का वर्णन है। श्लोक १९ से ६३ तक चौलुक्य नरेशों की कीर्त्ति व पराक्रम का क्रमानुसार विवरण दिया गया है। श्लोक ७० से ९७ के मध्य राजा वीरधवल और उसके पूर्वजों की प्रशंसा की गयी है। वस्तुपाल का वंशवृक्ष, उसके पूर्वजों का वर्णन एवं उसके मंत्रित्वकाल की प्रशंसा श्लोक ९८ से १३७ के मध्य की गयी है। इसके बाद श्लोक १३८ से १४० के मध्य वस्तुपाल के शौर्य व सुकृत्यों का वर्णन है। श्लोक १५८ से १६१ तक वस्तुपाल के गुरु विजयसेन सूरि की प्रशंसा की गयी है। इसके बाद श्लोक १६२ से १७७ के मध्य वस्तुपाल के धार्मिक व लोकोपकारी कार्यों तथा भवनों आदि का वर्णन किया गया है। श्लोक १७८ में कवि का नाम और अन्तिम श्लोक १७९ में आर्शीवचन कहा गया है।

वस्तुपाल तेजःपाल प्रशस्ति—इस प्रशस्ति के रचयिता जयसिंहसूरि हैं। इसके प्रथम चार श्लोकों में मुनिसुव्रत की स्तुति की गयी है। श्लोक ५ से ३२ तक मूलराज प्रथम से भीम द्वितीय तक के चौलुक्य नरेशों का वर्णन है। श्लोक ३३ से ३९ के मध्य चौलुक्यों की बघेला शाखा से सम्बन्धित शासकों—अर्णोराज से वीरधवल तक का स्पष्ट विवरण दिया गया है। श्लोक ४० से ४९ तक प्राग्वाट वंश तथा वस्तुपाल के पूर्वजों का परिचय देने के पश्चात् मल्लदेव, वस्तुपाल तथा तेजपाल की उत्पत्ति का उल्लेख किया गया है। श्लोक ५० व ५१ में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि भीम द्वितीय ने वीरधवल की अनुनय-विनय पर वस्तुपाल तथा तेजपाल को मंत्री पद दिया था।[2] श्लोक ५२ से ६३ तक वस्तुपाल के विविध धार्मिक कृत्यों, मन्दिरों के निर्माण व जीर्णोद्धार तथा धार्मिक यात्राओं की चर्चा की गयी है। श्लोक ६४ से ७६ के मध्य वस्तुपाल का यशोगान किया गया है। अन्तिम श्लोक में कवि ने पुनः सुव्रतमुनि को प्रणाम किया है। इस प्रशस्ति में ऐतिहासिक तथ्यों का क्रमानुसार विवरण दिया गया है।

वस्तुपाल प्रशस्ति—इस प्रशस्ति के रचयिता मलधारी गच्छ के देवप्रभसूरि के शिष्य नरचन्द्रसूरि हैं। इन्होंने वस्तुपाल को न्याय, व्याकरण तथा साहित्य की शिक्षा दी थी।[3] इस प्रशस्ति में २६ श्लोक हैं। प्रशस्ति के प्रथम श्लोक में मंगलाचरण के रूप में आदिनाथ की स्तुति की गयी है। दूसरे श्लोक में प्राग्वाट वंशोत्पन्न चंडप, चंड, सोम, अश्वराज तथा लूणिग, मल्लदेव, वस्तुपाल व तेजपाल (चारों भाइयों) का उल्लेख किया गया है। प्रशस्ति के शेष भाग में कवि ने अपने आश्रयदाता वस्तुपाल की प्रशंसा की है। इसमें वस्तुपाल की दानवीरता, धर्म के प्रति आस्था एवं न्यायप्रियता आदि का वर्णन किया गया है। इस प्रशस्ति के बीसवें श्लोक में वस्तुपाल की यात्रा का चित्रण किया गया है। अन्तिम भाग में वस्तुपाल के धार्मिक

१. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-६, पृ० ४३८।

२. जयसिंहसूरि, वस्तुपाल तेजःपाल प्रशस्ति, श्लोक ५०-५१।

३. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-६, पृ० ४३८।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कृत्यों एवं उसके अलौकिक चरित्र की प्रशंसा की गयी है। इस प्रशस्ति के कई श्लोक गिरनार शिलालेख में प्राप्त होते हैं।[1]

नरेन्द्रप्रभसूरिकृत वस्तुपाल प्रशस्ति—वस्तुपाल के समसामयिक विद्वान् मुनियों में नरेन्द्रप्रभसूरि का प्रमुख स्थान था। इन्होंने वस्तुपाल की शत्रुंजय तीर्थ यात्रा में भी भाग लिया था।[2] १०४ श्लोकों में लिखी गयी यह प्रशस्ति ऐतिहासिक व साहित्यिक दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। इसके प्रथम श्लोक में जिन और महादेव की श्लेषमय स्तुति की गयी है। श्लोक २ से १२ के मध्य चौलुक्यवंशी नरेशों की कीर्त्ति और श्लोक १३ से १७ के मध्य बघेलाशाखा का वर्णन किया गया है। इसके बाद श्लोक ९८ तक वस्तुपाल की तीर्थ यात्राओं, धर्मशालाओं व मन्दिरों के निर्माण तथा जीर्णोद्धार को चर्चा की गयी है। अन्त में नागेन्द्रगच्छ के आचार्यों और प्रशस्ति के रचयिता एवं उसके गुरु का वर्णन है।

नरेन्द्रप्रभसूरि विरचित ३७ श्लोकों की एक अन्य प्रशस्ति भी प्राप्त हुई है। इसमें राजावीरधवल, वस्तुपाल और तेजपाल की कीर्त्ति का वर्णन है।[3] इसमें किसी ऐतिहासिक घटना का उल्लेख नहीं है। पूरी प्रशस्ति में वस्तुपाल का विस्तार से गुणगान किया गया है। श्लोक २२ से २४ तक राजावीरधवल की प्रशंसा है।

अन्य प्रशस्तियाँ—उपर्युक्त प्रशस्तियों के अतिरिक्त वस्तुपाल के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों द्वारा रची गयीं कुछ अन्य प्रशस्तियाँ भी प्राप्त होती हैं।

यथा—

उदयप्रभसूरि ने स्तम्भतीर्थ में निर्मित उपाश्रय की एक प्रशस्ति बनायी है।[4] इसमें कुल १९२ श्लोक हैं। इसका कुछ भाग गद्य में है। इसमें उपाश्रय के निर्माता वस्तुपाल एवं उसके गुरु के वंशवृक्ष आदि की प्रशंसा की गयी है।

उदयप्रभसूरि विरचित ५ श्लोकों की एक अन्य प्रशस्ति भी प्राप्त होती है।[5] इसमें नेमिनाथ व आदिनाथ के प्रति भक्तिभाव व्यक्त करते हुए वस्तुपाल की दानशीलता का वर्णन एवं उसके दीर्घायुष्य कामना की गयी है।

सुकृतसंकीर्तन महाकाव्य के रचयिता अरिसिंह ठक्कुर ने १२ श्लोकों की एक प्रशस्ति लिखी है।[6] इसमें वस्तुपाल को वस्तुपाल तथा वसन्तपाल दोनों नामों से सम्बोधित किया गया है। इसमें किसी ऐतिहासिक घटना का उल्लेख नहीं है लेकिन काव्यात्मक शैली में वस्तुपाल का यशोगान अवश्य किया गया है।

---

१. सुकृतकीर्त्तिकल्लोलिन्यादि, भूमिका, पृ० २१-२३।
२. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ६, पृ० ४४०।
३. नरेन्द्रप्रभसूरि, वस्तुपाल प्रशस्ति, श्लोक २१।
४. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग–६, पृ० ४३८।
५. वही, पृ० ४३८।
६. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ६, पृ० ४४१।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

वस्तुपाल के परम मित्र यशोवीर ने भी ४ पद्यों की एक प्रशस्ति की रचना की है।[1] इसमें वस्तुपाल के गुणों की प्रशंसा की गयी है।

इसके अतिरिक्त 'सुकृतकीर्त्तिकल्लोन्यादि' ग्रन्थ में 'वस्तुपाल स्तुति काव्यानि' शीर्षक के अन्तर्गत १३ श्लोकों की एक प्रशस्ति प्राप्त हुई है, जिसका प्रारम्भ वस्तुपाल की स्तुति से किया गया है।[2] इसके सभी पद्य वस्तुपाल की प्रशंसा से सम्बन्धित हैं, लेकिन इसमें रचयिता का नामोल्लेखन हीं है।

३. प्रबन्धादि अन्य ग्रन्थ

प्रबन्ध ग्रन्थों में भी महामात्य वस्तुपाल से सम्बन्धित अनेक विवरण प्राप्त होते हैं, जो ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इन ग्रन्थों में प्रबन्ध-चिन्तामणि, प्रबन्धकोश एवं प्रबन्ध पञ्चशती में उपलब्ध वस्तुपाल विषयक कथांश तत्कालीन गुजरात के इतिहास को स्पष्ट करने में परमोपयोगी सिद्ध हुए हैं।

प्रबन्ध चिन्तामणि—प्रबन्ध चिन्तामणि वि० सं० १३६१ की रचना है, जिसे प्रसिद्ध जैनाचार्य मेरुतुङ्ग ने लिखा है। सम्पूर्ण ग्रन्थ पाँच प्रकाशों में विभक्त है और इसमें कुल ग्यारह प्रबन्ध हैं। इसके प्रथम प्रकाश में मूलराज से दुर्लभराज तक, द्वितीय प्रकाश में भीम, तृतीय प्रकाश में सिद्धराज जयसिंह तथा चतुर्थ प्रकाश में कुमारपाल, अजयपाल, शिशुमूलराज एवं भीम द्वितीय का वर्णन किया गया है। चतुर्थ प्रकाश में द्वितीय प्रबन्ध—'वस्तुपाल तेजःपाल प्रबन्ध' में वस्तुपाल व तेजपाल के जन्म, शत्रुञ्जयादि तीर्थयात्रा, शंख के साथ युद्ध एवं उनके सुकृत्यों का चित्रण किया गया है।

प्रबन्धकोश—प्रबन्ध कोश की रचना वि० सं० १४०५ में राजशेखर सूरि ने की है। इसमें कुल २४ प्रबन्ध हैं। इसीलिए इसको 'चतुर्विंशति प्रबन्ध' भी कहा जाता है। इसमें १० जैनाचार्य, ४ कवियों, ७ राजाओं और ३ राजमान्य पुरुषों का चरित वर्णित है। राजमान्य पुरुषों में महामान्य वस्तुपाल की विजयों एवं धार्मिक कृत्यों की विशिष्ट रूप से चर्चा की गयी है। इसमें वस्तुपाल के मृत्यु समय व स्थान का भी उल्लेख मिलता है। इसमें वस्तुपाल को मृत्यु वि० सं० १२९८ में अंकेवालिया नामक स्थान पर बतलायी गयी है।[3] लेकिन यह वर्णन वसन्तविलास महाकाव्य में वर्णित तिथि[4] (वि० सं० १२९६ माघ, कृष्णा, पञ्चमी, रविवार,

---

१. वही, पृ० ४४१।

२. स्वस्तिश्री वस्तुपालाय बभौ यद्बुद्धिसुभ्रुवः।
क्रीडीकृताम्बरं शैव्याञ्जनभाजन यद् यशः॥
—सुकृतकीर्त्तिकल्लोलिन्यादि पृ० ४०

३. विक्रमादित्यात् १२९८ वर्षे प्राप्तम्। अंकेवालिया ग्रामम् यावत् प्राप। प्र० को० पृ० १२८।

४. वसन्तविलास, सर्ग १४ श्लोक ३७।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

प्रातःकाल) से साम्य नहीं रखता है, जो अत्यधिक प्रामाणिक है ।[1]

प्रबन्ध पञ्चशती—शुभशीलगणि विरचित प्रबन्ध-पञ्चशती का 'द्वितीय अधिकार' महामात्य वस्तुपाल सम्बन्धी जानकारी के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें वस्तुपाल की माता कुमारदेवी को आभूमंत्री की पुत्री बताया गया है, जो पहले विधवा थी। बाद में उससे आकृष्ट होकर अश्वराज ने उसके साथ विवाह किया। इस ग्रन्थ में अश्वराज और कुमारदेवी से उत्पन्न ७ पुत्रों और ४ पुत्रियों का सनाम्ना उल्लेख किया गया है।[2] इसमें वस्तुपाल एवं वसन्तविलास महाकाव्य के रचयिता बालचन्द्रसूरि के सम्बन्धों की भी चर्चा है।

उपर्युक्त प्रबन्ध ग्रन्थों के अतिरिक्त जैन-संस्कृत-साहित्य के कतिपय अन्य ग्रन्थ भी इस सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जिनमें निम्नलिखित ग्रन्थ द्रष्टव्य हैं।

वस्तुपाल चरित—वस्तुपाल की मृत्यु के लगभग २००० वर्ष पश्चात् पन्द्रहवीं शताब्दी में जिनहर्षगणि ने इस काव्य की रचना की है। इसमें महामात्य वस्तुपाल का जीवन चरित विस्तार से वर्णित है और यह कई ऐसे ऐतिहासिक तथ्यों को उद्घाटित करता है जो वस्तुपाल के समसामयिक काव्यों द्वारा प्रस्तुत नहीं किये गये हैं। कवि ने इस काव्य में वस्तुपाल के जीवन और कार्यों से सम्बन्ध रखने वाली पूर्ववर्त्ती ऐतिहासिक सामग्री का उपयोग किया है।

शंख पराभव—यह एक नाटक है, जिसके रचयिता कवि हरिहर हैं, जो वस्तुपाल के आश्रित कवियों में से एक थे।[3] वस्तुपाल की वीरता से प्रभावित होकर कवि ने इस नाटक का प्रणयन किया था। इसमें लाट देश का शासक जिस समय यादवराज सिंहण से युद्ध कर रहा था, उसी समय वीरधवल द्वारा स्तम्भतीर्थ पर आक्रमण करके उसे हस्तगत करने का वर्णन किया गया है। इसके बाद शंख और वस्तुपाल के मध्य होने वाले युद्ध की विस्तार से चर्चा की गयी है, जिसमें शंख को पराजित होकर आत्मरक्षा के लिए लाट की राजधानी भृगुकच्छ की ओर पलायन करना पड़ा था।

उपदेश तरंगिणी—श्री रत्नमन्दिरगणि विरचित उपदेशतरंगिणी में वस्तुपाल की संघयात्रा एवं उसके सुकृत्यों का विस्तार से वर्णन किया गया है। इस ग्रंथ के अनुसार वस्तुपाल संघयात्रा वि० सं० १२८५ में हुई थी। इसमें २४ दन्तमय देवालय, १२० काष्ठ देवालय, ४५०० गाड़ियाँ, १८०० डोलियाँ, ७०० सुखासन, ५०० पालकियाँ, ७०० आचार्य, २००० श्वेताम्बर साधु, ११०० दिगम्बर, १९०० श्रीकरी, ४०० घोड़े, २००० ऊँट तथा ७ लाख मनुष्य थे।[4] यद्यपि यह वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतीत होता है लेकिन इससे इतना तो अवश्य स्पष्ट होता है कि उस समय श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदाय में इतना मतभेद नहीं था, जितना अब है।

---

१. सं० १२९६ महं० वस्तुपालो दिवंगतः। वही भूमिका पृ० ८।

२. प्रबन्ध-पञ्चशती, द्वितीय अधिकार, पृ० २३४।

३. डॉ० रामजी उपाध्याय मध्यकालीन संस्कृत नाटक, पृ० २३४।

४. श्री रत्नमन्दिरगणि, उपदेशतरंगिणी, पृ० २४।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

उपर्युक्त ग्रंथों व प्रशस्तियों के अतिरिक्त महामात्य वस्तुपाल के जीवन चरित व सुकृत्यों से सम्बन्धित कई शिलालेख व अभिलेख भी प्राप्त होते हैं। ऐसी भी सम्भावना की जाती है कि महामात्य वस्तुपाल के जीवन से पूर्ण अथवा आंशिक रूप में सम्बन्ध रखने वाले कुछ ऐसे भी जैन-संस्कृत ग्रन्थ हैं, जो अभी तक प्रकाश में नहीं आ सके हैं। इस प्रकार जैन-संस्कृत-वाङ्मय में महामात्य वस्तुपाल का प्रभावशाली व्यक्तित्व वर्णित है और निस्संदेह यह कहा जा सकता है कि यही वाङ्मय वस्तुपाल की कीर्ति-पताका का प्रमुख उन्नायन है।

चरवा, इलाहाबाद–२१२२०३

●

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

भारतेन्दु का जैन काव्य

—विद्यावारिधि डॉ० महेन्द्र सागर प्रचंडिया

आधुनिक हिन्दी काव्यधारा के प्रवर्तक के रूप में समादृत रहे हैं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र। वे अपने समय के बेजोड़ अभिव्यक्तिकार थे। अपने युग की चेतना को सशक्त वाणी दी थी उन्होंने। श्री हेमन्त शर्मा द्वारा प्रणीत 'भारतेन्दु को पढ़ने के बाद', पृष्ठ तेरह के अनुसार प्रथम भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के समय वे वर्त्तमान थे और उस समय वे सप्त वर्षीय थे।

उस समय का वैचारिक समाज दो भागों में विभक्त था। एक दृष्टि थी जो अंग्रेजों की चाटुकारिता करने के पक्ष में थी और दूसरी दृष्टि थी जो भारतीय चेतना को जागृत करने में कटिबद्ध थी। भारतेन्दु पर दोनों ही दृष्टियों की प्रभावना रही। आरम्भ में उन्होंने अंग्रेजों द्वारा भारत में नये-नये आविष्कारों और उपलब्धियों से संबंधित काव्य रचा, बाद में उनके दृष्टिकोण में यथेच्छ परिवर्तन हुआ। उन्होंने अंग्रेजों को रीति-नीति का अभिप्रेत समझा और उसकी पर्याप्त आलोचना भी की।

भारतेन्दु का एक सशक्त साहित्यिक अखाड़ा था और वे स्वयं थे उसके खलीफा। साहित्यिक और लोक की नाना विधाओं में सशक्त अभिव्यक्ति दी इस अखाड़े के विविध साहित्यकारों ने। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सभी विधाओं खूब रचा और अन्य साथियों को साहित्य सृजन के लिये प्रोत्साहित भी किया।

काव्य-शास्त्र के साथ-साथ वे संगीतशास्त्र के मनीषी थे। उन्होंने विविध राग-रागिनियों पर आधारित तमाम पदों की रचना की और तत्कालीन नव लेखन में प्रवृत्त होने के लिए यथेष्ठ प्रोत्साहित किया। काव्य विशेषतः पद्य के साथ-साथ भारतेन्दु ने गद्य में भी प्रचुर परिमाण में हिन्दी के कलेवर का अभिवर्द्धन किया। वे रंगमंच के विशेषज्ञ थे और थे कमाल के अभिनेता भी। वे सचमुच हिन्दी रंगमंच के संस्थापक माने जाते हैं। उन्होंने रीति-कालीन काव्यधारा को खड़ी बोली में अभिव्यक्त करने का सूत्रपात किया, यद्यपि उनक ब्रजभाषा काव्य भी हिन्दी की अपूर्व निधि है।

भारतेन्दु जी ने स्फुट काव्य भी खूब रचा। इसी सन्दर्भ में 'जैन कौतूहल' नामक काव्य उनके द्वारा रचा गया। कुछ लोगों की मान्यता रही है कि वे जैन थे पर यह तय है कि वे अग्रवाल थे और अग्रवाल समुदाय में जैनेतर और जैन लोगों में वैवाहिक सम्बन्ध स्थिर होते रहे हैं। विवेच्य कवि ने जैन काव्य रचने में जैनधर्म का गम्भीर अध्ययन अवश्य किया होगा।

जैन कौतूहल की रचना सन् १८७३ में सम्पन्न हुई। रचना के आरम्भ में आराध्य को स्मरण करने के व्याज से उन्होंने स्वयं लिखा—"अर्हन्नित्यपि जैन शासन रताः"। इससे यह प्रमाणित होता है कि उनकी जैनधर्म में भी रुचि और श्रद्धा रही है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कृति का समर्पण उन्होंने अपने प्रिय साथियों, सम्बन्धियों, विद्वानों और सभी स्वजनों को सम्बोधित करते हुए पत्रात्मक शैली में किया है। यथा—

प्यारे,

तुम तो मेरा मत जानते ही हो, इस पचड़े से तुम्हें क्या ? यह देखो, यह नया तमाशा। जैन कौतूहल नामका काव्य तुम्हें दिखाता हूँ। तुम्हें सौगंध, वाह-वाह अवश्य कहना।

केवल तुम्हारा
हरिश्चन्द्र

जैनधर्म में 'अरिहंत' पंच परमेष्ठियों में अग्रगण्य है। अरिहंत जन्म-मरण से मुक्त्यर्थ अपने सभी कर्मों का विनाश करते हैं, साथ ही लोक के प्राणियों को सन्मार्ग पर चलने के लिए कल्याणकारी उपदेश-दिशा दर्शन भी देते हैं। अरिहंत के अनन्त उपकार हैं। स्वयं कवि इसी भावना का प्रतिपादन करता है। यथा—

पियारे दूजो को अरहंत ?
पूजा जोग मानिकै जग मैं जाको पूजैं संत।
अपुनी-अपुनी रुचि सब गावत पावत कोउ न अंत।
'हरीचंद' परिणाम तुम्हीं है तासों नाम अनंत ॥ १ ॥

अरिहंत का एक भेद है तीर्थंकर। जैनधर्म के वर्तमान चौबीस तीर्थंकरों का उल्लेख प्राप्त है। ऋषभनाथ पहले तीर्थंकर थे। मानवी संस्कृति के पुरस्कर्त्ता थे ऋषभनाथ। वे पौराणिक, आगमिक तथा वैदिक वाङ्मय में किसी न किसी संदर्भ में समादृत देवता के रूप में वन्दनीक हैं। कवि ने भी इसी भावना से अनुप्राणित निम्न पद में उनकी कीर्ति, कीर्तन तथा वन्दना की है। यथा—

जय जय जयति ऋषभ भगवान्।
जगत् ऋषभ बुध ऋषभ धरम के ऋषभ पुरान प्रमाण।
प्रगटित-करन धरम पथ धारत नाना वेश सुजान।
'हरीचंद्र' कोउ भेद न पायो कियो यथारुचि गान ॥

तेईसवें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ ऐतिहासिक मान्यता प्राप्त हैं। प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य और संस्कृति द्वारा परिपुष्ट है कि वे लोक में अपने उपदेश और वात्सल्य भावना के कारण आदरणीय पुरुष की संज्ञा से समादृत रहे हैं। उन्हें 'पुरसादरनीय' कहा गया है। भक्त उन्हें पाने के लिए व्याकुल है। वह वेद-पुराणों के वातायन से उन्हें पाकर अपना प्रत्यय और प्रमाण समझकर अपनी प्रियता अभिव्यक्त करते हैं। प्रस्तुत पद में कविवर इसी आशय का बखूबी चित्रण करते हैं। यथा—

तुमहि तौ पार्श्वनाथ हौ प्यारे।
तलफन लागैं प्रान बगल तें छिनहु होहु जो न्यारे।
तुम सौ और पास नहिं कोऊ मानहु करि पतियारे।
'हरीचंद' खोजत तुमहीं को वेद-पुरान पुकारे ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

प्रत्येक तीर्थंकर के उपासक उत्तम के रूप में भक्त श्रेष्ठ शासन देव और शासन देवी होती हैं। भगवान् पार्श्वनाथ की शासन देवी हैं—पद्मावती। लोक में विश्वास है कि जागतिक बाधाएँ और संकटों का परिहार माता पद्मावती के स्मरण करने से समाप्त हो जाते हैं। इसीलिए उनकी उपासना और वन्दना भक्तों द्वारा प्रचलित है। यथा—

जै जै पद्मावती महारानी।
सब देवनि मैं तुमरी मूरति हम कँह प्रगट लखानी।
तुमहि लच्छमी, काली, तारा, दुरगा शिवा भवानी।
'हरीचंद' हमकों तो नैनन दूजी कहूँ न दिखानी॥

लोक में फैली भ्रांति को समाप्त करने के लिए कवि कोविद हरिश्चन्द्र ने उद्घोष किया कि जैन को नास्तिक कहने वाला कौन है? यह धर्म तो प्राणी मात्र के अस्तित्व को स्वीकार करता है तथा अहिंसा, दया तथा परोपकार से प्रत्येक प्राणी के कल्याण की कामना करता है। इतना ही नहीं, जैनधर्म तो अत्यन्त आस्तिकवादो धर्म है क्योंकि प्रत्येक प्राण में यह भगवान् होने की सम्भावना को प्रमाणित करता है। अपने कर्म-पुरुषार्थ से प्रत्येक प्राणी अंततः एक दिन भगवान् बन सकता है। यथा—

जैन को नास्तिक भाखै कौन?
परम धरम जो दया अहिंसा सोई आचरत जौन।
सत कर्मन को फल नितमानत अति विवेक के भौन।
तिन के मतहि बिरुद्ध कहत जो महा मूढ़ हैं तौन।
सब पहुँचत एक हि थल चाहो करो जौन पथ गौन।
इन आँखिन सों तो सब ही थल सूझत गोपी-रौन।
कौन ठाम जहँ प्यारे नाहीं भूमि, अनल, जल, पौन।
'हरीचंद' ए मतवारे तुम रहत न क्यों गहि मौन॥

उपर्यंकित संक्षिप्त चर्चा से स्पष्ट है कि महाकवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'जैन कौतूहल' में जैनधर्म से सम्बन्धित तथ्यपूर्ण चर्चा की है। लोक में जब क्रिया ज्ञान रहित सम्पन्न होती है तब रूढ़ि का जन्म होता है। जैनधर्म में ज्ञान की प्रधानता है अतः यहाँ रूढ़ियों को कोई मान्यता नहीं दी गई है। ज्ञानपूर्वक क्रिया साधना का रूप धारण करती है। जैनधर्म साधना प्रधान धर्म है। इसीलिए यहाँ प्रत्येक कर्त्ता अपने कर्म-फल का भोक्ता होता है।

विवेच्य काव्य में कुल छत्तीस पदों का उल्लेख प्राप्त है। विविध राग और रागिनियों पर आधारित ये पद रचे गए हैं। इनकी भाषा अत्यन्त सरल और सरस है। पूरे काव्य में प्रसाद गुण तथा शान्त रस की प्रधानता है। हिन्दी पाठियों को आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता द्वारा प्रणीत इस रचना का भी यथेष्ठ ज्ञान और सम्मान होना चाहिए।

मंगल कलश
१९४, सर्वोदय नगर
आगरा रोड, अलीगढ़

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

ऐतिहासिक जैन डायरेक्टरी—बिहार—सन् १९१४

(श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन डायरेक्टरी के आधार पर)

—संकलनकर्ता सु० कु० जैन

आरा :

कलकत्ते से ३६८ मील के फासले पर (ई० आई० आर० लाइन पर) स्टेशन से एक मील उत्तर और गंगा से ६ मील दक्षिण आरा शाहाबाद जिले का सदर स्थान रोनकदार शहर है। यह शहर अत्यन्त प्राचीन मनोज्ञ दिगम्बर जैन मन्दिर होने से प्रसिद्ध है। शहर में १४ शिखरबंद मन्दिर और १३ चैत्यालय हैं। एक शिखरबन्द मन्दिर शहर से ८ मील की दूरी पर मसाढ़ ग्राम में है, और दो मन्दिर शिखरबंद धनपुरा ग्राम में जो शहर से दो मील है वहाँ हैं, एक मन्दिर में श्रीपार्श्वनाथ स्वामी की १९०२ वि० सं० की प्रतिष्ठित मूर्ति विराजमान है, जिसकी नासिका सन् १८५७ ई० के गदर के समय कुछ खण्डित हो गई है। धनुपुरा के दोनों मन्दिरों में धर्मशालाएँ हैं और मसाढ़ के मन्दिर में भी एक धर्मशाला है, इस प्रकार ३ धर्मशालाएँ तो शहर के बाहर हैं और यात्रियों को सब प्रकार के आराम के योग्य एक बहुत बड़ी धर्मशाला शहर बाजार की सड़क पर बाबू हरप्रसाद दास की प्रसिद्ध है।

इसी शहर में स्वर्गीय बाबू देवकुमार की इच्छानुसार बाबू करोड़ीचंद जी के प्रयत्न से श्री जैनसिद्धान्त भवन स्थापित हुआ है, इस भवन में प्राचीन जैन ग्रन्थों का बड़ा भारी समूह है। ताड़ पत्रों पर लिखे हुए कर्नाटकी लिपि के ग्रंथ भी सिद्धान्त भवन में हैं। भवन की ओर से "जैन सिद्धान्त भास्कर" ऐतिहासिक त्रैमासिक पत्र प्रकाशित होता है।

पंचायती दिगम्बर जैन मन्दिर रेलवे स्टेशन से ४ फर्लांग की दूरी पर शहर में महाजन टोली में है, इस मन्दिर में भी एक धर्मशाला है। एक धर्मशाला जल मन्दिर के निकट, टुकटुक कुँवर के मन्दिर में, और एक धर्मशाला बाबू सुखानंदजी के बगीचे में मन्दिर के पास है। इस शहर में उपर्युक्त ७ दिगम्बर जैन धर्मशालाएँ हैं। जैन मन्दिर यहाँ के अत्यन्त रमणीय हैं। अग्रवाल, जैसवाल, दशाग्रवाल आदि दिगम्बर जैनियों के सर्व गृह ६७ हैं, जिनकी मनुष्य संख्या ३५० है। इस शहर के निवासी स्वच्छ, प्रियवादी और विद्वान हैं, प्रत्येक मन्दिर में हर दिन शास्त्रसभा होती है, सर्व मंदिरों में ४३१ के करीब धर्मशास्त्र हैं। यहाँ पर एक कन्यापाठशाला भी है, आरे में व्यापार सब प्रकार का होता है।

चौक, कचहरियाँ, मौलाबाग, नागरी प्रचारिणी सभा आदि कई स्थान भी देखने योग्य हैं। (पृष्ठ ५७१)

गया :

बांकीपुर से ५७ मील दक्षिण, बिहार प्रदेश के पटना विभाग में जिले का सदर स्थान हिन्दुओं का तीर्थ गया शहर है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

गया श्राद्ध के लिये भारतवर्ष में प्रधान है, आश्विन मास के कृष्ण पक्ष में लाखों यात्री गया आते हैं। स्टेशन से शहर तक हर तरह की सवारी मिलती है। शहर में कई धर्मशालाएँ हैं।

गया २ हिस्सों में बँटा हुआ है, अर्थात् साहबगंज, पुरानी गया, दोनों फल्गु नदी के बाएँ किनारे पर हैं, साहबगंज में रेलवे स्टेशन यूरोपियन देशी लोगों की कोठियाँ कचहरियाँ, जेलखाना, अस्पताल, पब्लिक लायब्रेरी, तैरने का हम्माम और घुड़दौड़ की सड़क है। साहबगंज व्यापारी जगह है। साहबगंज में दिगम्बर जैनियों के खंडेलवाल अग्रवालों के ६४ घर और मनुष्य संख्या २९७ है। एक शिखरबन्द जैन मन्दिर, जैनसभा, जैन पाठशाला और जैनधर्मशाला भी है। खास गया में एक चैत्यालय एक खंडेलवाल के गृह की ५ मनुष्य संख्या है। शहर की मनुष्य संख्या अनुमान ८१ हजार है, पंडे अधिक हैं।

देखने योग्य स्थान

रेलवे स्टेशन से डेढ़ मील पूर्वोत्तर फल्गु नदी के बाएँ तट "विष्णुपदका मन्दिर" नदी किनारे के घाट रामसागर मुहल्ले में 'रामसागर' नामक तालाब, पहाड़ी, अनेक देवमन्दिर, श्राद्ध के स्थान गया के विष्णुपद के मन्दिर से छह मील दक्षिण फल्गु नदी के किनारे 'बुद्धगया' है। इस स्थान पर महात्मा बुद्ध ने ६ वर्ष तक ५ चेलों के साथ कठिन तपस्या की थी। गया से बुद्धगया तक पक्की सड़क गई है, बौद्धगया बौद्ध लोगों के लिये संसार में सबसे अधिक पवित्र स्थान है, कई लोगों का मत है कि मगधदेश के राजा 'अशोक' ने इस मन्दिर को बनवाया। इतना प्राचीन मन्दिर शायद ही कहीं हो। मन्दिर में पूर्वाभिमुख की बुद्ध की विशाल मूर्ति है। जिसका बायाँ हाथ ठोढ़ी के पास और दाहिना हाथ नीचे की ओर गिरा हुआ है। मूर्ति पर सोने का मुलम्मा है। और भी कई बौद्धमूर्तियाँ हैं, गया के हिन्दू मन्दिरों में भी कई बौद्धमूर्तियाँ हैं और आसपास के कई मन्दिर प्राचीन निशानातभी देखने योग्य है। (पृष्ठ ५८३)

गुणावा : सिद्धक्षेत्र :

यह गौतमस्वामी का निर्वाण क्षेत्र बिहार प्रान्त के पटना जिले में नवादा (ई० आ० आर०) के स्टेशन से डेढ़ मील है, नवादा से बैलगाड़ी किराये कर 'पावापुर' 'राजगृही' और 'कुंडलपुर' की यात्रा को जाते हैं। नवादा स्टेशन पर ६ महीने यात्रियों की बहुत भीड़ रहती है, जो रात को९ बजे और शाम को ६ बजे की गाड़ी से उतरते हैं उनको सवारी न मिलने के कारण तथा स्टेशन पर धर्मशाला न होने के कारण बहुत कष्ट उठाना पड़ता है।

गुणावा से श्री गौतमस्वामी पंचमगति (निर्वाण) को प्राप्त हुये हैं, उनकी चरण-पादुका सहित एक छोटे तालाब के मध्य तक एक बहुत अच्छा रमणीय मन्दिर है। मन्दिर के पास एक धर्मशाला भी श्वे० दि० की है। पक्के आँगन में पक्का कुआ है, धर्मशाला के भीतर से मन्दिर का रास्ता है, सामने की वेदी में श्री महावीर स्वामी के चरण तथा दिगम्बराम्नाय की दो प्रतिमाएँ और श्वेताम्बराम्नाय की एक प्रतिमा विराजमान है। इसी वेदी की बाईं

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

बाजू पर एक कोठरी में गौतमस्वामी के चरण और दिगम्बर श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदाय की प्रतिमाएँ विराजमान हैं। मन्दिर के भीतर चारों तरफ हर एक तीर्थंकर के चरण बने हैं। वेदी के पीछे पाषाण की एक और प्रतिमा विराजमान है, मन्दिर में एक ब्राह्मण पूजन करता है। प्रबन्ध तीर्थक्षेत्र कमेटी की ओर से अच्छा होता है। (पृष्ठ-५८४)

बाढ़ :

बंगाल प्रान्तान्तर्गत पटना जिले में बाढ़ (ई० आई० आर०) स्टेशन से करीब २ मील गंगा के दाहिने किनारे पर बाढ़ कसवा है। गंगा के किनारे पर हिन्दु देवताओं के मन्दिर हैं।

यहाँ दिगम्बर जैन अग्रवालों के २१ गृह हैं, और मनुष्य संख्या १३३ है। यात्रियों के ठहरने के लिये दिगम्बर जैन धर्मशाला मन्दिर के निकट है। यहाँ दिगम्बर जैनियों के दो मन्दिर हैं, एक मन्दिर तो खास लालबाबू द्वारा निर्मापित हुआ था, यह मन्दिर बहुत साफ सुन्दर और रमणीय है। प्रतिमा भी मनोज्ञ है, पूजन प्रक्षाल यथाविधि प्रतिदिन होता है।

दूसरा मन्दिर पंचायती है, इसमें चार वेदियाँ हैं, इस मन्दिर में प्रतिमाओं का बड़ा समूह है। लाला नेमीदासजी जैन-धर्म के अच्छे ज्ञाता हैं। इस मन्दिर में शास्त्रसभा प्रतिदिन होती है। सन्तदास के पिता पं० राजा रामनारायणजी हो गये हैं, ऐसा कहते हैं कि श्री सम्मेदशिखरजी तेरहपंथी कोठी के मन्दिर की प्रतिष्ठा इनके हाथ से हुई थी। (पृष्ठ-५८७)

पच्छार-पहाड़ :

गया जिले में औरंगाबाद की सीमा के पूर्व की ओर रफीगंज से २ मील के फासले पर पच्छार नामक पहाड़ है, जिसकी एक गुफा का मुख ईंटों से बन्द है और बाहर की बाजू पर वेदी में श्रीपार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा अति मनोज्ञ है और इसके आस-पास तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ हैं। इससे यह पहाड़ जैनियों का मालूम होता है, यहाँ पर बौद्ध और हिन्दुओं के कुछ भी चिह्न नहीं हैं। यहाँ से पहाड़ की तलेटी में २ फर्लाङ्ग की दूरी पर 'चून' और दक्षिण की ओर एक मील पर देवकुली नाम के दो ग्राम हैं। इन दोनों ग्रामों में प्राचीन खंडहर बहुत से पाये जाते हैं। इस पहाड़ का विशेष वृत्तान्त मालूम होने पर दूसरी आवृत्ति में छापा जायगा। (पृष्ठ-५८८)

पावापुरी : सिद्धक्षेत्र :

यह सिद्धक्षेत्र बिहार प्रान्त के पटना जिले में पोष्ट 'गिरियके' से ७ मील की दूरी पर है। निकटवर्ती स्टेशन बिहार और नवादा, वख्त्यारपुर लाइन ब्रांच रेलवे में है। स्टेशन पर घोड़ा गाड़ी आदि हर समय मिलती हैं।

इसका प्राचीन नाम आपापुरी (पुण्यभूमि) था। यहाँ से भगवान 'श्रीमहावीर स्वामी' मोक्ष पधारे हैं, जैनियों का पवित्र सिद्धक्षेत्र है। यहाँ एक दिगम्बर आम्नाय का खास मन्दिर है। जिसमें ४ वेदी और ४१ प्रतिमाएँ हैं। मूलनायक 'श्रीमहावीरस्वामी' की प्रतिमा है। इसकी प्रतिष्ठा सेठ 'मोतीचन्द खेमचन्द' शोलापुर वालों ने भट्टारक 'सत्येन्द्रभूषण' से कराई

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

थी। पुरी, पोरवरपुर, महावीरस्वामी के मन्दिर की जागीर में है। मोक्षस्थान का मन्दिर ग्राम के निकट एक तालाब के मध्य में है, जिसको 'जलमन्दिर' कहते हैं। जल मन्दिर में महावीरस्वामी, गौतमस्वामी और सुधर्माचार्य के चरण हैं। तालाब के किनारे उत्तर की ओर छोटा सा गोल पहाड़ है, इसके एक मन्दिर में महावीरस्वामी के चरण हैं। इसमें दिगम्बर श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदाय के यात्री दर्शन पूजन करते हैं। ग्राम में एक मन्दिर है, जिसमें एक वेदी पर दिगम्बर आम्नाय की प्रतिमा विराजमान है और चार वेदियों में श्वेताम्बर आम्नाय की हैं।

इस स्थान पर कुल चार मन्दिर हैं, जिनमें अनुमान ५१ धर्मशास्त्र हैं और ग्राम में दो जैसवाल जैनियों की मनुष्य संख्या ९ है। ३ धर्मशालाएँ हैं जिनमें अनुमान तीन हजार आदमी ठहर सकते हैं। ये धर्मशालाएँ सेठ 'हरमुखराय फूलचन्द' और आरावाले सेठ, 'गुलाबचन्दजी' की बनवाई हुई हैं।

कार्तिक वदी १४ से अमावस्या तक बहुत बड़ा मेला भरता है, इस समय रथ यात्रा होती है। यह मेला वीरनिर्वाण सं० २४३४ से प्रतिवर्ष भरता है, कार्तिक वदी अमावस्या यह तिथि महावीरस्वामी के निर्वाण गमन की है, इसी तिथि को इसी क्षेत्र पर भगवान के निर्वाण कल्याण का उत्सव इन्द्रादि देव, मनुष्य, पशु, पक्षियों ने मनाया था। (पृष्ठ-५९०)

भागलपुर :

भागलपुर बिहार प्रान्त में ईस्ट इण्डियन रेलवे लाइन में देखने योग्य प्रसिद्ध शहर जिले का सदरस्थान है। रेलवे स्टेशन से शहर पास ही है, स्टेशन के पास टोडरमल की उत्तम धर्मशाला है। यह बड़ा सिविल स्टेशन तिजारती शहर गंगा के दाहिने किनारे पर २ मील लम्बा एक मील चौड़ा भागलपुर शहर है, दिगम्बर जैनियों के यहाँ पर ३० घर हैं, जिनकी मनुष्य संख्या १२८ है। मारवाड़ी टोले में दिगम्बर जैनियों का एक मन्दिर है, यहाँ यात्री लोग अधिक आते हैं। गंगा के किनारे बूढ़ानाथ का मन्दिर, देशी कालेज, सिविल अस्पताल और शुजागंज बजार देखने योग्य हैं, इसमें बाबू हरनारायण चंडीप्रसाद जैन आढ़तिया टसर कोसे के कपड़ों की दुकान है। वे दोनों दुकानें में प्रसिद्ध और विश्वासपात्र हैं। भागलपुर में दरी, कम्बल और पर्दे भी सुन्दर बनते हैं। (पृष्ठ-५९१)

मन्दारगिरि : सिद्धक्षेत्र :

बिहार प्रान्त में भागलपुर से दक्षिण १६ कोस पर सब्बलपुर जमींदारी में मन्दारहिल नाम की स्टेशन से करीब । मील पर एक छोटा-सा पहाड़ अनुमान ७०० फुट ऊँचा अति प्राचीन सिद्धक्षेत्र है। यही मन्दारगिरि पर्वत साक्षात् श्रीवासुपूज्य स्वामी के मोक्षकल्याणक का स्थान है। वर्तमान में लोग चम्पापुरी में ही पाँचों कल्याणक मानकर पूजन करते हैं। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि यह पर्वत जंगल के बीच होने से यात्री लोग पहाड़ पर जाने का कष्ट न उठाते थे। दूसरे मन्दारगिरि पर्वत पर कोई प्रबन्ध कुछ काल पहिले बिलकुल नहीं था। वर्तमान में तीर्थक्षेत्र कमेटी की ओर से मुनीम व पुजारी द्वारा प्रबन्ध अच्छा होने लगा है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

निर्वाणकांड पूजा आदि के अनुसार वासुपूज्यस्वामी का निर्वाण (मोक्ष) कल्याणक चम्पापुरी में ही हुआ ऐसा प्रतीत होता है, तथापि श्रीगुणभद्राचार्यकृत 'उत्तरपुराण' में मोक्ष कल्याणक श्रीमंदारगिरि पर हुआ ऐसा लिखा है, तो भी दोनों में कोई विरोध नहीं है, कारण कि चम्पापुर का वर्णन शास्त्रों में ४८ कोस अर्थात् ९६ मील लम्बा और ३६ कोस चौड़ा है और इस कारण से यह पहाड़ इसी नगर में गर्भित था, जो चम्पापुरी से ३२ मील है। इस कारण से निर्वाणकांड में सामान्य कथन की अपेक्षा चम्पापुर शब्द आया है परन्तु श्री जिनसेनाचार्य के शिष्य गुणभद्राचार्यकृत उत्तरपुराण के ५८वें अध्याय में मन्दिरशैल स्पष्ट लिखा है। तो यह बात निःसन्देह सिद्ध हुई कि वासुपूज्यस्वामी को मोक्ष लाभ यहीं से हुआ है।

मन्दारगिरि पर दो बहुत प्राचीन शिखरबन्द मन्दिर जो करीब १००० वर्ष से ऊपर के बने हुए हैं, एक बड़ा और एक छोटा मन्दिर सबसे ऊँची टोंक पर हैं। बड़े मन्दिर में युगल चरणपादुका और छोटे में ३ युगल विराजमान हैं। कुछ काल से ये मन्दिर जैनियों की शिथिलता से बिल्कुल बेमरम्मत हो गये हैं।

भागलपुर से मन्दारगिरि तक रेल खुली है, इसलिए जो यात्री क्षेत्र निमित्त भागलपुर, चम्पापुर पधारें अवश्य इस सिद्धक्षेत्र के दर्शन करके धर्मलाभ उठावेंगे।

यह पर्वत बहुत ही रमणीय, चढ़ाव सुगम है और दर्शन करते ही मन का खेद, चिन्ता आदि विकार दूर होकर मन प्रसन्न और प्रफुल्लित हो जाता है।

अन्य धर्मी लोग भी इस पर्वत को पवित्र मानकर पूजते हैं। सीताकुण्ड, रामकुण्ड नामक शीतल जल के कुण्ड और एक मन्दिर है। तलहटी में एक पापहरणी नामक पुष्करणी है, यात्री इसमें स्नान करते हैं। पौष की संक्रान्ति के समय ३ दिन तक मेला लगा रहता है। मन्दारगिरि २ मील के फासले पर अन्य धर्मियों का मधुसूदन का मन्दिर और तालाब है। (पृष्ठ ५९१)

पटना :

बिहार प्रान्त में गंगा नदी के दाहिने किनारे पर बिहार की राजधानी पटना बसा हुआ है, हिन्दुस्तान में पटना प्रसिद्ध शहर है। ईस्ट इंडियन रेलवे का स्टेशन कलकत्ते से ३३२ मील की दूरी पर है। पूर्व समय में इसी शहर में "समन्तभद्रस्वामी" ने भेरी बजाकर और वाद करके ब्राह्मणों को हराया था। वर्तमान में संस्कृत विद्या का केन्द्र काशी है, पूर्व समय में पटना था। आचार्य 'अमितगति' ने 'धर्मपरीक्षा' नामक ग्रन्थ में इस शहर का बहुत अच्छा वर्णन किया है।

शिशुनागवंश के राजा अजातशत्रु के पोते उदायाश्व ने पाटलीपुत्र बसाया था। यहाँ की जमीन के नीचे कई मकानों के निशान हाल में मिले हैं, जिससे यह मालूम होता है कि, दो हजार वर्ष पूर्व यहाँ एक बहुत नगर—बौद्ध सम्राट् 'अशोक' के समय का था, जिसमें १४ लक्ष नर-नारी वास करते थे। इसके पुराने नाम पाटलीपुत्र, कुसुमपुर, पुष्पपुर पालिबोत्रा हैं। पाटलीपुत्र का जिकर यूनानी इतिहास वेत्ता 'मेगास्थिनीजने' जो 'सेल्यूकस' की तरफ से

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

ईस्वी सन् से ३०० वर्ष पहिले 'चन्द्रगुप्त' राजा के पास राजदूत होकर आया था और उसी ने इसका नाम पालिबोत्रा अपने इतिहास में लिखा है। मेगास्थिनीज लिखता है कि उस जमाने में पाटलीपुत्र की लम्बाई ८० स्टेडिया और चौड़ाई १५ स्टेडिया थी, इस हिसाब से उसका गिर्द १९० स्टेडिया अर्थात् २४ मील होता है। नगर के चारों ओर ३० हाथ गहरी खाई बनी हुई थी और दीवारों में ६४ बड़े दरवाजे और ५७० बुर्ज थे।

यहाँ से सेठ 'सुदर्शन' मोक्ष पधारे हैं। दिगम्बर जैनियों के यहाँ पर ५ मन्दिर और १ चैत्यालय है। इनमें से एक जियातम्बोली गली में, एक कालीबीबी के कटरा में, एक हडबाड़ा की गली में, दो कम्बलदह में और दो अन्तिम गुलजारबाग में हैं, एक तो सेठ सुदर्शन का और दूसरे में जिनप्रतिमा विराजमान है, एक चैत्यालय बाबू हरखचन्दजी का उनके घर के निकट है।

धर्मशाला स्टेशन के पास ही सेठ 'गुरुमुखरायजी' सरावगी की है और ए स्टेशन सेक डेढ़ मील की दूरी पर कम्बलदह में सेठ सुदर्शन के बगीचे के सामने श्रीनेमिनाथस्वामी के मन्दिर के पास है और एक धर्मशाला जियातम्बोली की गली के मन्दिर में है। पटने में बौद्धधर्म के कई सुप्रसिद्ध जलसे हुए हैं। शहर की मनुष्य संख्या १३४८८६ है। जिनमें दिगम्बर जैनियों के सिर्फ ६ घर और कुल ३३ मनुष्य संख्या है। मन्दिरों में धर्मशास्त्र १२ हैं।

पटना में व्यापार तो हर तरह का होता है परन्तु कपड़ा, तेल के बीज, नमक, सज्जी, शक्कर, अनाज, चावल, धान तो बाहर से आते हैं और तम्बाकू, नारियल, रुई, गर्ममसाला, बाहर को भेजे जाते हैं। नील और अफीम की बड़ी भारी मंडी है। (पृष्ठ ५८८)

कुलुहा पहाड़ :

यह पर्वत गया से ३८ मील हजारीबाग जिले में राजा पद्मा के राज्य में है। गयाजीके दक्षिण पश्चिम पक्की सड़क गई हुई है। १० मील पर 'जिंदापुर' गाँव है आगे १० मील पर 'ढोवी' ग्राम। फिर बांई तरफ कच्ची सड़क मुड़ती है, तीन मील 'अमारुत' ग्राम है। फिर कच्ची सड़क के ६ मील आगे 'हंटरगंज' थाना है। यहाँ डांकबंगला है, तथा खाने पीने का सामान कुलुहा पहाड़ जानेवालों को यहाँ से लेना चाहिये। इसके आगे जंगल के बीच में से रास्ता है। 'हंटरगंज' में 'लीलांजन' और 'फल्गु' नदी का संगम है। नदी से ६ मील आगे 'हतवरिया' ग्राम है। यहाँ पर मुसाफिरों के ठहरने को १ चट्टी है; ४, ५ कोठरियाँ बनी हैं। दक्षिण की ओर करीब १ मील चलने पर पर्वत के नीचे जंगल में रास्ते की दाहिनी तरफ एक बड़े वृक्ष के नीचे बहुत से पत्थर के टुकड़ों का एक ढेर पड़ा है, इसके ऊपर 'श्री पार्श्वनाथ-स्वामी' की एक अखंडित अत्यन्त प्राचीन पद्मासन १। हाथ ऊँची कृष्णवर्ण दि० जैनप्रतिमा विराजमान है। यह मूर्ति बहुत ही रमणीक है। अन्यमती लोगों ने सेन्दूर और दही प्रतिमा के ऊपर इस कदर पोता है कि कई-कई अंगुल चढ़ गया है। लोग हमारी इस पूजनीय प्रतिमा को 'द्वारपाल' के नाम से पुकारते हैं। मालूम होता है कि यह प्रतिमा या तो पर्वत के ऊपर के मन्दिर की यहाँ लाई गई है अथवा यहीं पर मन्दिर हो जिसमें यह मूर्ति विराजित हो। चढ़ाव बहुत जगहों पर 'जैनबद्री' के समान है। सीधी ऊँची बड़ी-बड़ी चट्टानें हैं, जिनपर पग

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

फिसलने से नीचे आ सकते हैं। २ मील ऊपर दाहिने हाथ की ओर एक मन्दिर है, जिसको 'कुलेश्वरीदेवी' का मन्दिर कहते हैं। इस मन्दिर के बाहर इमली के वृक्ष के नीचे कई दिगम्बर जैनमूर्तियाँ पड़ी हैं। एक पार्श्वनाथ की अखंडित दि० जैनमूर्ति पद्मासन १। हाथ ऊँची वृक्ष की जड़ में सट गई है, १ चौबीसी पट का पाषाण है, अन्य कई मूर्तियाँ इसी मन्दिर में विराजमान थीं। परन्तु वर्षों से जैनियों के बेखबर रहने से ब्राह्मण पंडों ने इनको बाहर डाल दीं और उनके स्थान में देवी की मूर्ति स्थापित कर दी और इसे कुलेश्वरीदेवी का मन्दिर प्रसिद्ध कर दिया। यह मन्दिर ३ गज लम्बा २ गज चौड़ा होगा। वसन्त पंचमी चैत्र आश्विन में हजारों अजैन आते हैं, और यों भी नित्य आते रहते हैं। मिथ्यारूढ़ि के अनुसार बहुत से बकरे आदि चढ़ाते हैं, जिनका वध किया जाता है। पहाड़ के पीछे 'दान्तार' और 'सर्गा' ग्राम हैं। वहाँ के पंडे प्रतिदिन अपनी-अपनी बारी से आते हैं, और शाम तक ठहरकर लौट जाते हैं। इस मन्दिर के सामने एक बड़ा भारी सरोवर है, जो पहाड़ के ऊपर होने पर भी चारों ओर ऊँची उठती हुई पर्वत की शिलाओं के मध्य में स्थित है, बड़ा ही रमणोक और कमलों से प्रफुल्लित है। करीब ३०० गज लम्बा और ६० गज चौड़ा होगा। गहराई ४ मर्द (पुरुष) बतलाई जाती है, हर ऋतु में पानी से भरा रहता है, जल अत्यन्त निर्मल है। देवी के मन्दिर की दक्षिण की ओर एक पीपल का वृक्ष है। इसके नीचे '२ दिगम्बर जैन प्रतिमाएँ' पड़ी हैं। एक मूर्ति एक हाथ की पद्मासन है, मस्तक खंडित है, आसन में लेख है संवत् ४४३ मालूम होता है। दूसरी मूर्ति का भी मस्तक खंडित है, पद्मासन है, आसन में लेख है, पढ़ा नहीं जाता। इसके आगे 'भीम्मरगुफा' है। यहाँ कई गुफाएँ हैं। एक गुफा के नीचे १ हाथ की पद्मासन एक मूर्ति है, मस्तक खंडित है। दोनों ओर दो मुनियों की मूर्तियाँ हैं; नीचे अस्पष्ट लेख है, एक बड़ी गुफा में एक जीर्णमन्दिर के चिह्न हैं। वरुण वृक्ष के नीचे बन्द गुफा के भीतर एक पार्श्वनाथस्वामी की दि० जैनमूर्ति अत्यन्त प्राचीन और मनोज्ञ २॥ हाथ ऊँची पद्मासन कृष्ण वर्ण ९ फन की बिलकुल अखंडित और पूजनीय विराजमान है। अन्यमती इस हमारी परम ध्यानाकार प्रतिमा को भैरों के नाम से कहते हैं और सेंदूर चढ़ाते हैं। इसके ऊपर कोई लेख नहीं है, इससे चतुर्थ काल की प्रतीत होती है। जो उपसर्ग जैनियों को बेखबरी से इस समय प्रतिमाजी पर मौजूद है वह कब दूर होगा ?

आगे इसी भीम्मर गुफा के सम्बन्ध में एक ऐसी गुफा है, जो एक बड़ी भारी शिला से छाई हुई है, भीतर लेट करके जाने को राह है। अन्दर केवल एक मुनि के पद्मासन आकार में बैठने की ही जगह है।

आगे सरोवर के उत्तर पश्चिम के तटों पर वृक्षों की ओर जल की रमणीकता और एकान्तता है। सरोवर के उत्तर की ओर एक ऐसा सुन्दर मैदान है कि जिस पर मालूम होता है कि किसी समय जैन मन्दिर होगा। इस स्थान पर जैन मन्दिर को अपूर्व शोभा आ सकती है। दक्षिण की ओर चढ़ने की बहुत साफ कृष्ण वर्ण की एक ऊँची चट्टान है। १०० गज के अनुमान चढ़ने पर एक कुण्ड आता है, जिसको 'सूरजकुण्ड' कहते हैं। इसमें एक मर्द पानी भरा हुआ है। इसके किनारे एक छोटी बौद्ध मूर्ति का आसन पड़ा है। इस चट्टान के ऊपर जाने

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पर मैदान है। वहाँ एक छोटा दि० जैन ५ कलशीदार शिखरबन्द मन्दिर बना हुआ है। ५०० वर्ष पहले का निर्मापित मालूम होता है। इस मन्दिर में वेदी है। वेदी में एक मूर्ति ९ इन्च चौड़ी पद्मासन सन् १९०१ में अखंडित विराजमान थी, परन्तु अब केवल आसन ही है, जिस पर सांतियेका चिह्न है, इससे मालूम होता है कि यह श्रीसुपार्श्वनाथस्वामी की बिम्ब थी। सुनते हैं कई वर्ष हुए अजैनों ने इस मूर्ति को खण्डित कर डाली है। मन्दिर के चारों ओर चबूतरा और प्रदक्षिणा है। मन्दिर के पीछे एक शिला के ऊपर जाने से करीब ८० गज मन्दिर के उत्तर पूर्व एक साफ गोल चट्टान है, इसको पंडे लोग 'माधव मढ़ई' कहते हैं। किन्तु यह समोशरण का चिह्न है। यहाँ मंडप छाया गया था। मंडप छाने के ९ छिद्र हैं, एक बीच में ८ कोनों पर; मध्य में पूजन स्थान बना हुआ है। इस चट्टान पर 'शिलालेख' हैं, ४ लकीर मालूम होती हैं, अक्षर नागरी हैं, वायु और धूप से अक्षर घिस गये हैं, संवत् १०००, स म द स षा आदि अक्षर मालूम होते हैं, इस चट्टान के चारों ओर यहाँ के बैठने का चबूतरा है। इस ओर पहाड़ की चट्टानें बहुत ही रमणीय हैं। यहाँ से पर्वत की शोभा बड़ी बहारदार है, चारों ओर हरे-हरे वृक्ष सुगन्धित विस्तारते हैं, इस पर्वत पर सालके वृक्ष बहुत हैं, इनकी लकड़ी में बहुत बड़ी सुगन्धि आती है। वायुपुराण में गया महात्म्य में इस पर्वत की प्रशंसा लिखी है। एक श्लोक का आधा चरण इस भाँति है, "कोलाहले गिरिवरे तपस्तेपे सुदारुणं"। इस पर्वत पर कौवे कभी नहीं बोलते, न यहाँ मक्खियाँ थीं, परन्तु जब से देवी के सामने पशुहिंसा होने लगी है, तब से मक्खियाँ दिखलाई देने लगी हैं। सामने जो नवीन मन्दिर है वह जैनियों का है। ५०० वर्ष का बना है तथा इसकी प्रतिमा को थोड़े दिन हुए किसी ने खण्डित कर दी है। एक बहुत ऊँची शिला के नीचे दबी हुई 'बानगंगा' हैं, जिसमें गंदा पानी भरा रहता है; गहराई सिर्फ १ लोटा डूबने तक की है। बाहर से जल दीखता नहीं है। न कोई पक्षी कभी चोंच दे सकता है और न बरसात के पानी की एक बूँद ही इसमें पड़ सकती है। भीतर ही भीतर से परम निर्मल जल भरा रहता है। यह जल मोती के समान परम शुद्ध है। कहते हैं कि जेठ महीने में इसी प्रमाण पानी भरा रहता है। ऊपर चट्टानें चढ़ने पर 'आकाश लोकन' नाम की शिखा है यह चोटी सबसे ऊँची है और कोसों से दिखाई देती है। नीचे से १॥ मील ऊँची होगी। इस शिखर पर एक चरणपादुका बहुत ही प्राचीन अंकित है। दोनों चरण १ वालिस्त लम्बे होंगे, याने ८ इन्च लम्बे और आध इन्च चौड़े होंगे। यह चरणपादुका अवश्य किसी तीर्थंकर के कल्याणक के चिह्न स्वरूप होगी, ऐसा विदित होता है। इस विषय में एक अंग्रेज ने लिखा है कि यही 'भद्दलपुर' है और यह चरण भी श्रीशीतलनाथ स्वामी से ही सम्बन्ध रखते हैं। यहाँ से ८ कोस १ 'भदिआ' ग्राम है, जो 'अमारुद' से ४ कोस है।

शिखर से नीचे उतरने पर महान शिला की एक ओर की भीत में १० दि० जैन प्रतिमाएँ पद्मासन प्रत्येक एक-एक फुट की ऊँची अखण्डित पर्वत में अंकित हैं। हरएक के दोनों ओर चमरेन्द्र बने हैं। प्रतिमाओं के आसनों में चिन्ह भी हैं, जो प्रगट होते हैं। वे बैल, हाथी, घोड़ों के हैं। अनुमान से मालूम होता है कि प्रथम तीर्थङ्कर से १०वें तीर्थङ्कर शीतलनाथस्वामी तक के ये बिम्ब हैं। प्रक्षाल न होने के कारण बहुत काई जम गई है। अन्यमतियों

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

द्वारा सिंदूर, दही चढ़ाने से भी बहुत हानि पहुँचती है। इन दसों प्रतिमाओं के ऊपर नागरी भाषा में लेख है जो बहुत घिस गये हैं। केवल निम्न अक्षर पढ़े गये—

"श्रीमत् महाचन्द फलिद सुपुत्र सघ धर मई स्हिं सिद्धम्" इन दस मूर्तियों के स्थान को पंडों ने दशावतार गुफा मशहूर कर रक्खा है। इसी बृहद्शिला की दूसरी ओर की भीत में भी १० दि० जैन प्रतिमाएँ हैं। पाँच पद्मासन एक २ फुट की, और ५ खड्गासन डेढ़ २ हाथ ऊँची अत्यन्त मनोज्ञ ध्यानाकार सर्व अखण्डित पर्वत में अंकित हैं। चिन्ह अप्रगट हैं। ऊपर लेख हैं, नागरी में ७ लाइन है, अस्पष्ट होने से पढ़ा नहीं जाता है। इस स्थान को पंडों ने पांडव गुफा के नाम से मशहूर कर रक्खा है। पर्वत की ऊँचाई आकाश लोकन शिखर तक ३ मील की होगी।

इस पर्वत के विषय में इण्डियन एन्टीक्वेरी मार्च १९०१ Indian antiquary March 1901 में एक लेख है जिसका शीर्षक है "Tour in South Bihar and Hagaribagh by M. A. Stein Ph. D." अर्थात् दक्खिन बिहार और हजारीबाग में दौरा महाशय एम० ए० स्टीन पी० एच० डी० का दौरा। इस साहब ने इस पर्वत का बहुत-सा हाल लिखा है और यही निश्चय किया है कि यह 'जैनतीर्थ' है।

एक स्थान में वह लिखते हैं जिसका सारांश यह है :—

"आकाशलोकन शिला की चरणपादुका को पुरोहित लोग कहते हैं कि विष्णु के हैं, परन्तु देखने से ऐसा ही निश्चय होता है कि यह जैन तीर्थंकर की चरण-पादुका है और ऐसा ही मानकर इसकी असल में पूजा होती थी"। आगे लिखता है :—

जिसका भावार्थ यह है :—

"पूर्व काल में यह पहाड़ अवश्य जैनियों का एक प्रसिद्ध तीर्थ होगा यह बात भले प्रकार स्पष्टतया प्रमाणित है। क्योंकि सिवाय दुर्गा देवी की नवीन मूर्ति के और बौद्ध मूर्ति के एक खण्ड के अन्य सर्व पाषाण की रचना के चिन्ह जो पहाड़ पर हैं, चाहे अलग पड़े हुए, चाहे शिलाओं पर अंकित, वे सर्व तीर्थंकरों को ही प्रगट करते हैं"।

'आकाश लोकन' शिला पर जो अत्यन्त प्राचीन चरणपादुका हैं वे खुली हुई हैं। धूप और वर्षात से और अधिक हानि को प्राप्त होंगी। इसलिये इनके ऊपर एक गुमटी ईंट व पत्थर की बननी चाहिये। जो ५०० वर्ष पहले का अखण्डित जैन मन्दिर उसके भीतर की वेदी में प्रतिष्ठित प्रतिबिम्ब विराजमान करना चाहिये। जो पार्श्वनाथ स्वामी की मूर्ति देवी के मन्दिर के बाहर वृक्ष में सटी है या तो उसको, या जो मूर्ति द्वारपाल के नाम से पर्वत के नीचे हैं उसको इस मंदिर में विराजमान किया जाय तो अच्छा है। इस मन्दिर के आगे ऊपर जो समोशरण का स्थान है व शिलालेख है उसके ऊपर टीन की छतरी छा देनी चाहिये, जिससे इस स्थान और लेखकी भले प्रकार रक्षा हो सके।

'भीम्भरगुफा' के पास जो जीर्ण मन्दिर है उसको ठीक कराके सुन्दर वेदी बनवा के चौथे काल की श्री पार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिबिम्ब २॥ हाथ ऊँची पद्मासन जो गुफा में रक्खी

Ac. Gunratnasuri MS
Jin Gun Aradhak Trust

है उसको विराजमान करना चाहिये। पर्वत के नीचे द्वारपाल नाम से प्रसिद्ध जो श्री पार्श्वनाथ की मूर्ति है उसको यदि वहाँ से उठाने में कोई बाधा हो तो उसी स्थान पर एक गुमटी बना वेदी में प्रतिमा विराजमान करना चाहिये।

हतवारियाँ ग्राम में १ धर्मशाला बननी चाहिये तथा एक पुजारी और एक आदमी मंदिरादिकों की रक्षा सेवा के वास्ते नियत होना चाहिये।

इस क्षेत्र के सुधार में धन व्यय करना नवीन मन्दिर बनाने की अपेक्षा कोटिगुणा फल का देने वाला है।

यात्रियों को सुभीता—

यात्रियों को उचित है कि गयाजी से अवश्य इस क्षेत्र की वन्दना को जावें।

भद्दलपुर—श्री शीतलनाथ स्वामी का जन्म शास्त्रानुसार भद्दलपुर नगर में हुआ है, वह भद्दलपुर क्या वही भदिया गाँव है, जो इस पर्वत के निकट है। यदि यह बात भले प्रकार प्रमाणित हो जावे तो यह कुलुहा पहाड़ श्री जिनेन्द्र के तप और ज्ञान कल्याणक का स्थान है, और भद्दलपुर गर्भ जन्म का ऐसा मानना होगा।

कहते हैं कि भदिया में एक सहस्रकूट चैत्यालय भी मोजूद है। भदेली के जंगल के भीतर एक मन्दिर है उसमें बौद्धों की कई प्रतिमाएँ हैं, जंगल में सहस्रकूट चैत्यालय पाषाण का पड़ा हुआ है। उसमें १००८ मूर्तियाँ हैं, इनका आसन बौद्धमत की प्रतिमाओं सरीखा है।

विद्वान् परोपकारियों को उचित है, कि वे शास्त्र द्वारा इस बात का निर्णय करें कि भद्दलपुर यही है, या कोई दूसरा। यदि यह साबित हो तो तीर्थक्षेत्र कमेटी को उचित है कि जन्मपुरी में चरण स्थापित करावे और इस तीर्थ को प्रसिद्ध करे।

चम्पापुर (नाथनगर) (सिद्धक्षेत्र):

भागलपुर से ४ मील (ई० आई० आर०) नाथनगर रेलवे स्टेशन से चम्पापुर (नाथनगर) मिला हुआ है। चम्पापुर पूर्व समय में बौद्ध राजाओं की राजधानी थी। यहाँ दिगम्बर जैन अग्रवालों के ४ गृह और २७ मनुष्य संख्या है, तथा दो शिखरबन्द मन्दिर हैं। और दोनों मन्दिरों में बृहदाकार बड़ो धर्मशाला भी है। इनमें से एक मन्दिर तेरहपंथी कहलाता है, जो इस समय 'बाबू छन्नूलालजी' कलकत्ते वालों के प्रबन्ध में है। और दूसरा बीसपंथी; इसके बनवाने वाले छपरा निवासी बाबू गुलाबचन्दजी ऑनरेरी मजिस्ट्रेट हैं और उनके ही प्रबन्ध में भी है। इन मन्दिरों को जाने वाले यात्री सीधे नाथनगर भी उतर सकते हैं। तेरहपंथी मन्दिर बहुत प्राचीन है। मुख्य श्रीगृह के आगे दो ऊँचे मानस्तम्भ बहुत प्राचीन हैं। श्रीगृह में एक मुख्य वेदी और ४ वेदियाँ चारों कोनों पर हैं। मुख्य वेदी में अन्य प्रतिमाओं के आगे श्रीवासुपूज्य स्वामी के चरण बहुत प्राचीन काले पत्थर पर अंकित हैं, जिन पर छत्र शोभित हैं। इस पाषाण के नीचे यह लेख है :—

"स्वस्तिश्री जय श्रीमङ्गल संवत् १६९३ शका १५५९ मनुनाम सम्वत्सरे मार्गशिर

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

शुक्ला २ शनै शुभ मुहूर्ते श्रीमूलसंघ सरस्वतीगच्छ बलात्कारगणे कुन्दकुन्दान्वये भट्टारक श्रीकुमुदचन्द्रस्तत्पदे भ० श्री धर्मचन्द्रोपदेशात् जयपुर शुभस्थाने वघेरवाल ज्ञाति से० श्रीपासा भा० से० श्रीसुनोई तथा पुत्रस श्री ५। नाभा० श्रीसजाई भर्तचम्पा पावापूज्यस्य शिखरबद्ध प्रासाद कारण्य प्रविष्टा व विद्याभूषणैः प्रतिष्ठितं वर्द्धितां श्रीजिनधर्म्यं।''

इससे विदित होता है कि जयपुर निवासी (नाम स्पष्ट नहीं) बघैरवाल जाति के किसी सेठ ने सं० १६९३ में श्रीधर्मचन्द्र भट्टारक के उपदेश से चरणों पर मन्दिर बनवाया जिसकी प्रतिष्ठा विद्याभूषण जी ने की। चरण बहुत प्राचीन हैं, उन पर केवल गुमटी आदि बनाना सं० १६९३ में हुआ। इस मन्दिर के मुनीम और पुजारी दोनों का काम भाई वसुनन्दन प्रसाद जी अग्रवाल करते हैं

बीसपंथी कोठी में भैंरोप्रसाद जी जैसवाल पुजारी और मुनीम हैं, जो कि मन्दिर की देखभाल और पूजन प्रक्षाल अच्छी तरह से करते हैं धर्मशास्त्र दोनों कोठियों में ८७ के अनुमान हैं।

यहाँ से आध मील गंगा नदी के एक नाले के तट पर जिसको कि चम्पानाला कहते हैं, एक जैन मन्दिर और धर्मशाला है। इसका प्रबन्ध श्वेताम्बरियों के आधीन है। इस मन्दिर में नीचे तो श्वेताम्बरी प्रतिबिम्ब और ऊपर श्रीगृह की वेदी में पाषाण की सर्व दिगम्बराम्नाय की प्रतिबिम्ब विराजमान हैं, जिनमें कई प्रतिबिम्ब बहुत प्राचीन हैं। जिनकी तफसील (ब्योरा) इस भाँति है :—

एक खड्गासन प्रतिमा श्री आदिनाथ स्वामी की, एक पद्मासन कृष्णवर्ण छोटी, दो पद्मासन कृष्णवर्ण की बड़ी, एक पद्मासन कृष्णवर्ण की चौबीसी सहित और एक पद्मासनस्थ श्री आदिनाथ स्वामी की एक गज ऊँची चम्पानाले से निकली है। प्रतिमा बहुत मनोज्ञ चौथे काल की मालूम पड़ती है। एक श्वेत पाषाण की पद्मासन सम्वत् १५१५ की प्रतिष्ठित, एक मूँगे सरीखे रंग की पाषाण की पद्मासन, सं० १८८१ की भट्टारक जगत्-कीर्ति द्वारा चम्पापुर के सन्तलाल द्वारा प्रतिष्ठित, दो छोटी कृष्ण पाषाण की पद्मासन, दो धातु की छोटी पद्मासन और एक पाषाण की चरणपादुका है, यहाँ पर पूजन प्रतिदिन दिगम्बर आम्नाय के अनुसार होती है। यहाँ पर श्रीवासुपूज्य स्वामी १२वें तीर्थंकर के पंचकल्याणक हुए हैं। गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाण पाँचों कल्याणकों के समय इस स्थान पर इन्द्रादि देवों का आगमन हुआ तथा इस पवित्र धरा (जगह) की स्वयं वन्दना की, भगवान् के पंचकल्याणक होने से यह क्षेत्र विशेष प्रशंसनीय है।

यहाँ पर भादों सुदी ११ से १५ तक मेला भरता है, वर्षभर में करीब तीन चार हजार यात्री वन्दना करने को आते हैं।

छपरा

बिहार के पटना विभाग में सारन जिले का सदर स्थान और प्रधान कस्बा सरयू नदी के बाएँ किनारे पर ४ मील लम्बा और लगभग आधा मील चौड़ा एक सुन्दर कस्बा छपरा

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

नामका है। स्टेशन पर सवारी हर तरह की मिलती है। कस्बे से पश्चिम की तरफ मैदान में राय बाबू बनवारीलालजी की बनवाई हुई एक उत्तम सराय है।

१८वीं सदी के अन्त में छपरे में फ्रांसीसी डच और पोर्तगीजों की कोठियाँ थीं, उस समय सारन जिला सोडा के लिये प्रसिद्ध था। फाटक पर घड़ी का ऊँचा बुर्ज है जिसके पास एक पक्का तालाब, पंचमन्दिर, धर्मनाथ का मन्दिर, रायबहादुर महावीर प्रसादजी की उत्तम कोठी, धनी लोगों की कोठियाँ, जेलखाना, गवर्नमेंट स्कूल, कचहरी, हथुआ के महाराज की उत्तम कोठी आदि स्थान देखने योग्य हैं। सारन की मनुष्य संख्या अनुमान ५८ हजार है। अग्रवाल जैनियों के १५ घरों की ८७ मनुष्य संख्या है, एक शिखरबन्द मन्दिर, एक चैत्यालय, दो धर्मशालाएँ और एक दानशाला भी है। धर्मशास्त्र अनुमान २०० हैं। रायबहादुर बाब गुलाबचन्द जी प्रसिद्ध धनी हैं, आपके बनवाये हुए कई जैन मन्दिर और धर्मशालाएँ हैं, कई मन्दिरों का प्रबन्ध आपके अधिकार में है। सोडा और लाख का व्यापार होता है।

राजगृह :

पटने जिले में बख्त्यारपुर रेलवे लाइन में शिलाव स्टेशन से ४ मील तथा बिहार से वायव्यकोन में २३॥ मील पर पहाड़ की तलेटी में यह जैनियों की प्राचीन नगरी मगध देश की राजधानी प्रसिद्ध है। राजमन्दिर भी कहते हैं। यहाँ 'श्रीमुनिसुव्रतनाथ का' जन्म हुआ था। जरासन्ध की राजधानी थी। यहाँ आने को बिहार से रास्ता अच्छा है बिहार में घोड़ा गाड़ी आदि सवारी के लिये मिलते हैं।

राजगृह से बड़गाँवा केवल ८ मील है बड़गाँवा एक छोटी बस्ती है, बस्ती में एक बौद्ध मन्दिर है, यहाँ नियत समय में बहुत बौद्ध यात्री आते हैं, यहाँ प्राचीन नालन्दा के चिन्ह अब तक मिलते हैं।

चीन के रहने वाले फाहियान ने लगभग ४०० ई० में और हुएंत्सांग ने सातवीं सदी में राजगृह को देखा था और लिखा है कि यहाँ गर्म पानी के कई झरने हैं।

यह नगर चतुर्थकाल में वैभव के शिखर पर था, जब यहाँ धर्म में बड़ी क्रान्ति मच रही थी, जैनधर्म नष्टप्राय होने लगा था और श्रीमहावीर स्वामी जैनधर्म के जीर्णोद्धार के लिये प्रयत्न कर रहे थे, उस समय राजगृह नगरी श्रेणिक महाराज की राजधानी थी, यह राजा बौद्धधर्म का प्रचारक था राजा श्रेणिक जैनधर्मी कैसे हुए इसकी एक कथा 'पुण्याश्रवकथाकोष' में इस प्रकार लिखी है :—

एक दिन राजा श्रेणिक महा पापकर्म से शिकार खेलने को गये शिकार से लौटते समय मार्ग में दिगम्बर मुनि तपस्या करते हुए मिले, तब राजा ने अत्यन्त क्रोधित होकर धर्म-द्वेष से मुनिराज के ऊपर अपने शिकारी कुत्ते छोड़ दिये, पर मुनिराज तपस्या के प्रभाव से कुत्ते नमस्कार कर नम्र होकर मुनिराज के समीप बैठ गये तब राजा ने और भी क्रोधित होकर मुनिराज के गले में एक मरा हुआ साँप डालकर सातवें नरक का कर्मबन्ध अपने गले में डाल लिया। तत्पश्चात् राजा श्रेणिक अपने महलों को चले गये और यह वार्ता अपनी पटटरानी

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

'चेलना' को सुनाई, राजी सुनकर अत्यन्त दुःखित हुई और बोली आपने यह महापाप कर्म करके नरक का रास्ता साफ किया। मुनियों के ऊपर उपसर्ग करने के बराबर संसार में कोई भी बड़ा पाप नहीं है।

चेलना बोली राजन्! मुनिराज का जब तक उपसर्ग दूर नहीं होगा तब तक मुनिराज वहीं स्थिर रहेंगे, तब राजा श्रेणिक बोले वे मुनि अपने हाथ से गले का साँप निकालकर नहीं फेंक सकते हैं, रानी ने कहा वे अपने हाथ से कभी ऐसा न करेंगे, चाहे प्राण भी क्यों न चले जावें।

तब राजा पश्चात्ताप करता रानी को साथ लेकर जहाँ मुनिराज विराजमान थे वहाँ पहुँच कर देखा तो मुनिराज ध्यान लगाये उपसर्ग समझ कर खड़े हुए हैं और गले में साँप पड़ा हुआ है। रानी ने उसी समय साँप निकालकर और गर्म जल से स्नान कराकर राजा रानी हाथ जोड़कर बोले भगवन्! उपसर्ग दूर गया हम लोगों को धर्मामृत पिलाइये, मुनिराज उपसर्ग टला समझकर दोनों को 'धर्मवृद्धि का लाभ हो' ऐसा बोले तब राजा ने मन में विचारा कि मैं तो बौद्धधर्म का मानने वाला और रानी परम जिनभक्त मुनिराज ने दोनों को समान धर्मवृद्धि के लिये कहा, 'मुनिराज! धन्य है मैंने आपके प्रति बहुत बुरा व्यवहार किया है, मुझे अपना सिर काटकर मुनिराज के ऊपर चढ़ाना चाहिये' राजा का ऐसा विचार जानकर मुनिराज बोले हे राजन्! यह तुमने बहुत बुरा विचार किया आत्मघात के समान दूसरा कोई पाप नहीं है। तब राजा रानी से बोले मुनिराज ने मेरे मन की बात कैसे जान ली रानी बोली महाराज! आप तो मन की बात जानने की कहते हैं परन्तु मुनिराज आपके कई भव जानते हैं, तत्पश्चात् राजा श्रेणिक ने मुनिराज से अपने भवांतर पूछे, भवांतर सुनकर राजा कहने लगा कि सचमुच जिनधर्म ही एक सच्चा धर्म है जिनदेव ही सच्चे देव हैं जिनगुरु ही ,सच्चे गुरु हैं जैनशास्त्र ही सच्चे शास्त्र हैं, मैंने इतने दिन वृथा ही खोये। राजा श्रेणिक जैनधर्म के परम भक्त हो गये और जैनधर्म का बड़ा उपकार किया। राजा श्रेणिक ने श्रीमहावीर स्वामी के समवसरण में जाकर श्रीगौतम गणधर से हजारों प्रश्न किये। राजा श्रेणिक की पट्टरानी चेलना परम जिनभक्त थी रानी की ही कृपा से श्रेणिक जैनधर्मावलम्बी हुये और सुखपूर्वक बहुत काल तक राज्य किया और कई सुन्दर जैन मन्दिर बनवाकर बड़ी भारी धर्मप्रभावना की।

राजगृही के पंचपहाड़ की तलेटी में एक ऐसा नया शहर बसाया कि मानों जिसके आगे इन्द्रपुरी भी तुच्छ थी, जिसमें पत्थर के ५२ कुण्ड बनवाये। इन कुण्डों में से २२ कुण्ड तो अब भी मौजूद हैं। जिनके नाम ये हैं—१. सरस्वतीकुण्ड, २. प्राचीष्यातरणीकुण्ड, ३, शालिग्रामकुण्ड, ४. भूतकुण्ड, ५. रामकुण्ड, (इस कुण्ड में से २ धाराएँ एक गरम पानी की और दूसरी शीत (ठंडे) पानी की बहती है) ६. गनेशकुण्ड, ७. सोमकुण्ड, ९. सीताकुण्ड, १० व्यासकुण्ड, ११. मार्कण्डेयकुण्ड, १२. गोदावरीकुण्ड, १३. गंगायमुनाकुण्ड, १४. अनन्तमुनिकुण्ड, १५. किशीथताकुण्ड १६. सप्तधाराकुण्ड, (इसमें से सातधारा निकलकर बहती है) १७. ब्रह्मकुण्ड, (इसमें एक हजार गरम पानी की धाराएँ बहती हैं) शेष कुण्डों के नाम मालूम नहीं

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

हैं, इन कुण्डों के कारण से हिन्दुओं का भी यहाँ पर बड़ा भारी मेला प्रतिवर्ष भरता है।

सप्तधारा के किनारे पर एक शिव मन्दिर और कन्हैया का मन्दिर है। अन्यधर्मी कुण्ड में स्नान करने से अपने को पवित्र-पाप रहित मानते हैं। बहुत सी स्त्रियाँ पुत्र कामना के लिये स्नान करती हैं।

राजा श्रेणिक के समय यहाँ जैन मन्दिर और धर्मशालाएँ बहुत थीं, जिनके खंडहर इस समय भी पाये जाते हैं।

राजगृह में ३०-४० गृह अन्य जाति के हैं, जैनियों का कोई घर नहीं है। केवल एक मन्दिर और एक धर्मशाला है। यह दोनों दिगम्बरी और श्वेताम्बरियों की शामिलात में हैं। इस मन्दिर में दिगम्बरी दो प्रतिमाएँ वेदियों में विराजमान हैं, नीचे की वेदी में ५ पाषाण की प्रतिमाएँ हैं। मूलनायक श्रीपार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा है। मन्दिर के बाहिर पश्चिम की ओर कोठे के ऊपर जाने की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। ऊपर को वेदी में ५ पाषाण की तथा धातु की एक प्रतिमा और एक चरणपादुका है।

पर्वत वन्दना—इस ग्राम से १ मील पर पंचपहाड़ है, प्रथम नीचे के किसी एक कुण्ड में स्नान करने के बाद प्रथम 'विपुलाचल' पर्वत पर जाना चाहिये। चढ़ने का रास्ता खराब है, यहाँ भगवान महावीर स्वामी का समवसरण आया था। ऊपर ६ मन्दिर हैं, एक मन्दिर में कायोत्सर्ग प्रतिमा विराजित है, दूसरे में श्रीमहावीर स्वामी के चरण हैं, तीसरे में श्रीचन्द्रप्रभ के चरण चौथे में श्रीमहावीर स्वामी की प्रतिमा पाँचवें में श्रीमुनिसुव्रतनाथ के चार कल्याणक और छठवें मन्दिर में श्रीनेमिनाथ और शान्तिनाथ स्वामी को चरण पादुकाएँ विराजमान हैं।

विपुलाचल पर्वत पर के मन्दिरों के दर्शन करके दक्षिण बाजू 'रत्नगिरि' पहाड़ पर जाना चाहिये, इस पर्वत पर दो जैन मन्दिर हैं, एक मन्दिर में श्रीनेमिनाथ, श्रीपार्श्वनाथ और श्रीमुनिसुव्रतनाथ की चरणपादुकाएँ हैं और दूसरे में श्रीपुष्पदन्त तथा शीतलनाथ स्वामी की प्रतिमाएँ विराजमान हैं, जो कि खंडित हैं। मन्दिर को एक बाजू में शिलालेख है जो अस्पष्ट है। रत्नागिरि के दर्शन करके उसके दक्षिण को ओर तलेटी से 'उदयाचल' पर्वत पर जाना चाहिये। उदयाचल बहुत ऊँचा है रास्ता ठीक नहीं है। इस पर्वत की शोभा देखने योग्य है जहाँ तहाँ गगनचुम्बित वृक्ष अनेक हैं, पुष्पों की सुगन्धिता के कारण चारों ओर भ्रमर गुञ्जार करते हैं। यहांके उद्यान के मध्य में एक मुख्य और चार दि० जैन मन्दिर हैं जिनकी कारीगरी देखने योग्य है।

मुख्य मन्दिर में श्रीऋषभनाथ के चरण और उत्तराभिमुख श्रीपार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा विराजमान है। प्रतिमा खंडित है। पर्वत से दक्षिण की ओर उतरने का मार्ग बहुत तंग है। पहाड़ की तलेटी में एक छोटा सा नाला है, इसको छोड़कर पूर्व बाजू में 'श्रमणगिरि' पर चढ़ने का रास्ता है, यहाँ तीन मन्दिर हैं, ऊपर के मन्दिर की वेदी में श्रीअजितनाथ और शान्तिनाथस्वामी को प्रतिमाएँ विराजमान हैं, जो कि खंडित हैं, तथा श्रीवासुपूज्यस्वामी की चरणपादुका है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इस पहाड़ की तलेटी में एक विस्तीर्ण मैदान है, जहाँ कि राजा श्रेणिक के महलों के निशानात पाये जाते हैं। बगीचे में पुष्करणी (बावड़ी) थी वह भी इस समय यहाँ पाई जाती है। इसके थोड़ी ही दूर 'व्यवहारगिरि' (वैभारगिरि) नामक पंचम पहाड़ है। ऊपर चढ़ने का रास्ता खराब है, जो एक गुफा के नजदीक से ही जाता है। इस गुफा के पूर्वभाग में ४ मुखवाली एक बुद्धदेव की मूर्ति है। गुफा के द्वार पर टूटी हुई २ छोटी मूर्तियाँ पड़ी हैं। द्वार पर घिसा हुआ एक शिलालेख है। बौद्धलोग सोनभंडार को बहुत पवित्र मानते हैं, कहते हैं कि इस स्थान पर सन् ईस्वी से ५४४ वर्ष पहले बुद्धदेव की मौजूदगी में इनके चेलों में ५०० आदमियों ने इकट्ठे होकर धर्मसभा की थी और यही बौद्ध लोगों का पहला जलसा कहलाता है। इस गुफा की छत में एक द्वार है, जो इस समय बन्द है, कहते हैं कि इसमें राजा श्रेणिक की अपार सम्पत्ति रक्खी है, इस द्वार को खोलने का प्रयत्न सरकार की तरफ से हुआ था पर कुछ फल नहीं निकला। पर्वत पर तीन जिनमन्दिर हैं। एक में श्रीचन्दप्रभस्वामी की प्रतिमा विराजमान है और दूसरे में श्रीअजितनाथ और ऋषभनाथ की प्रतिमा वेदीपर विराजमान है, तीसरे मन्दिर में श्रीपार्श्वनाथस्वामी की चरणपादुका है और एक प्रतिमा भी विराजमान है, सर्व प्रतिमाएँ खंडित हैं। इन मन्दिरों से एक मील पर गणधरस्वामी के चरणों सहित एक मन्दिर है। इन पाँचों पहाड़ों और तलेटी में ब्राह्मणों के कई मन्दिर हैं। कार्तिक माह में यहाँ बड़ा भारी मेला भरता है, जैन मन्दिरों को भी हिन्दू पवित्र मानकर दर्शन करते हैं।

श्रावक पहाड़ :

गयाजी के निकट रफीगंज से ३ मील पूर्व यह श्रावक नाम का पहाड़ करीब पाव मील ऊँचा एक ही शिला का मनोहर है, वृक्ष नहीं है, किनारे-किनारे अनेक शिलाएँ हैं। इसके नीचे पाँच मील पर जो बस्ती है उसका नाम भी 'श्रावक' है। इस पर्वत के ऊपर ४० गज जाने से १ गुफा मिलती है, जो १० गज लम्बी और ६ गज चौड़ी होगी। इसमें १ जीर्ण दि० जैन मन्दिर है, जो बिलकुल टूट गया है। ४ स्तम्भ पाषाण के द्वार पर लगे हैं। भीतर जाकर सामने ही प्राचीन पाषाण की एक अत्यन्त मनोज्ञ श्रीपार्श्वनाथ स्वामी की दि० जैन प्रतिमा पद्मासन विराजित है। आसन के स्थान से २ हाथ की ऊँचाई है। सिवाय बाएँ पग के और सर्व आंगोपांग अखंडित हैं। विदित होता है किसी अजैन द्वारा यह उपसर्ग किया गया हो। दोनों ओर इन्द्र हैं, फन टूटा है। अजैन लोग (लहिंगावीर) (नंगावीर) ऐसा नाम ले करके पूजते हैं। दस-दस बीस-बीस कोस चारों ओर बड़ी मान्यता है। सिन्दूर और दही चढ़ाया जाता है।

श्रावण सुदी १५ सलोने के रोज यहाँ बड़ा भारी मेला लगता है। इस गुफा में अन्य बहुत-सी खण्डित प्रतिमाएँ पड़ी हुई हैं। १ पाषाण के पट में ६ पद्मासन मूर्तियाँ हैं, नीचे यक्षिणी की मूर्ति लेटी है। इस पट के नीचे एक लेख प्राचीन लिपि में अंकित है। ऊपर एक बड़ा जैन मन्दिर इंटों का मालूम होता है, जो कि घास से छाया हुआ है। शिखर का चिह्न मालूम होता है। बीच में १ खुदा हुआ सूराख है, जिसमें १५ हाथ डोर जाती है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इस मन्दिर का द्वार पूर्व दिशा की ओर मालूम होता है। भीतर से प्रतिमा आदि का निकलना संभव है।

जिस स्थान पर यह श्रावक पर्वत स्थित है, इसके आसपास के लोग अब कोई जैनधर्म नहीं पालते हैं। 'श्रीपार्श्वनाथ स्वामी' की प्रतिमा को उपसर्ग होना जैनियों की बेखबरी का ही कारण है।

श्रीसम्मेदशिखर (सिद्धक्षेत्र) :

वीसं तु जिणवरिंदा अमरासुरवंदिदा धुद किलेसा।
सम्मेदे गिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं॥

बंगाल प्रान्त के हजारीबाग जिले में उपर्युक्त निर्वाण क्षेत्र है। ई० आई० आर० लाइन के 'ईशरी' स्टेशन से १५ मील मधुवन तक सड़क पक्की है। बैलगाड़ियाँ स्टेशन पर मिलती हैं। दूसरा रास्ता ई० आई० आर० लाइन में गिरीडीह स्टेशन से १८ मील मधुवन है, रास्ता यहाँ से मधुवन तक पक्की और साफ है। बैलगाड़ियाँ गिरीडीह में भी मिलती हैं। इस स्टेशन से बाजार तथा जैन धर्मशाला निकट ही है। यहाँ पर एक दिगम्बर आम्नाय का मन्दिर और एक धर्मशाला बीसपंथी आम्नाय की और एक तेरहपंथी आम्नाय की है। तथा एक धर्मशाला और मन्दिर श्वेताम्बर आम्नायका भी है। हर एक धर्मशाला की ओर से एक-एक चपरासी रेलवे स्टेशन पर यात्रियों की तलास में हर ट्रेन पर आते हैं, चपरासी लोग यात्रियों को बैल-गाड़ी का प्रबन्ध भाड़े पर मधुवन तक कर देते हैं।

मधुवन श्री सम्मेदशिखर की तलहटी में अति रमणीय स्थान है, यहाँ पर तीन धर्मशालाएँ हैं, एक बीसपंथी आम्नायकी (उपरेली कोठी) जो बहुत बड़ी अति उत्तंग है, इस कोठी और धर्मशाला के प्रबन्ध के लिये 'भा० दि० जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी' की तरफ से एक मैनेजर, एक मुनीम, एक जमादार, आठ चपरासी, एक खिदमतगार, एक भण्डारी, दो माली बगीचा में हैं, कोठी में एक हाथी भी है जिसका एक महावत और एक हाथी के खाने को घास काटने वाला है। कोठी के भीतर के चौक में अति रमणीय दिगम्बर जैन मन्दिर है, जिसके पूजन प्रक्षाल को दो पुजारी हैं, कोठी की इमारत देखने योग्य है। प्रबन्ध हर प्रकार से योग्य और प्रशंसनीय है।

दूसरी धर्मशाला—तेरहपंथी आम्नाय की (नीचली कोठी) है। इसके प्रबन्ध कर्त्ता बाबू 'छन्नूलालजी' कलकत्ता निवासी हैं, जिनकी तरफ से एक मुनीम, छै चपरासी, दो पुजारी, एक माली, प्रबन्ध के लिये नौकर हैं।

तीसरी धर्मशाला—श्वेताम्बर आम्नाय की (मझली कोठी) इसमें श्वेताम्बर आम्नाय के मन्दिर हैं प्रबन्ध ठीक है।

पर्वत वन्दना

पहिली धर्मशाला (उपरेली कोठी) के पास ही से पर्वत की चढ़ाई आरम्भ होती है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

मधुवन से दो मील की चढ़ाई पर मार्ग में 'गंधर्वनाला' है। इसके पास एक धर्मशाला है। इससे एक मील की चढ़ाई पर 'सीतानाला' पड़ता है।

यहाँ यात्री लोग पूजन की सामग्री धोते हैं। सीतानाला से कुछ दूर हनुमान और क्षेत्रपाल का मन्दिर है। सीतानाला से ३ मील चढ़ने पर 'श्रीकुन्थुनाथ स्वामी की' प्रथम टोंक है, इसके सन्मुख एक टोंक 'गौतम स्वामी की' है, इसके बाएँ हाथ की तरफ वन्दना करने जाते हैं। दूसरी टोंक 'श्रीनेमिनाथ की', तीसरी 'श्रीअरहनाथ स्वामी की', चौथी 'श्रीमल्लिनाथ स्वामी की', पाँचवीं 'श्रीश्रेयांसनाथ की', छठी 'श्रीपुष्पदन्त की', सातवीं 'श्रीपद्मनाथ की', आठवीं 'श्रीमुनिसुव्रत की', नवमी 'श्रीचन्द्रप्रभ स्वामी की' यह टोंक सबसे अलग और बहुत ऊँची है इस टोंक से एकदम नीचे उतरना पड़ता है। दशमी 'श्रीआदिनाथ की', ग्यारहवीं 'श्रीशीतलनाथ की', बारहवीं 'श्रीअनन्तनाथ की', तेरहवीं 'श्रीसम्भवनाथ की', चौदहवीं 'श्रीवासुपूज्य की', पन्द्रहवीं 'श्रीअभिनन्दनाथ की' टोंक है इसकी वन्दना करके एकदम नीचे उतरना पड़ता है, यहाँ एक जल मन्दिर है, इस मन्दिर में बाहर की २ कोठरियों में आमने सामने दिगम्बर आम्नाय की दो प्रतिमाएँ बहुत वर्षों से विराजमान थीं परन्तु इस समय दोनों कोठरियों का ताला बन्द है, एक का दरवाजा जरा हटाने से दर्शन हो जाते हैं। इस स्थान से फिर ऊपर की तरफ चढ़ाई प्रारम्भ होती है। एकदम ऊपर चढ़ने से प्रथम टोंक श्रीकुन्थुनाथ के पास से ही दाहिनी तरफ जाने से सोलहवीं टोंक 'श्रीधर्मनाथ की' सत्रहवीं 'श्रीसुमतिनाथ की' अठारहवीं 'श्रीशान्तिनाथ की' उन्नीसवीं 'महावीर स्वामी की' बीसवीं 'श्रीसुपार्श्वनाथ की' इक्कीसवीं 'विमलनाथ की' बाईसवीं 'श्रीअजितनाथ की' तेईसवीं 'श्रीनमिनाथ की' चौबीसवीं 'श्रीपार्श्वनाथ की' है, यह चौबीसवीं टोंक सबसे बड़ी और इतनी ऊँची है कि इस पर से बहुत दूर-दूर के स्थान दिखाई देते हैं, इसी टोंक के कारण कई लोग इसको पार्श्वनाथ पहाड़ कहते हैं।

इस टोंक से मधुवन आने के मार्ग पर एक डाक बंगला है, इससे नीचे उतरने पर एक और छोटा-सा बंगला है, इस स्थान से एक रास्ता 'निमियाघाट' को गया है और एक 'मधुवन' को।

इन रास्तों में पाटिया (सायनबोर्ड) भा० दि० जैनतीर्थक्षेत्र कमेटी की तरफ से लगे हैं, इन पाटियो में देवनगरी अक्षरों में रास्तों के नाम लिखे हैं।

इस पर्वत की ६ मील चढ़ाई ६ मील टोकों को वन्दना और ६ मील उतराई, इस प्रकार १८ मील को वन्दना है और १८ मील पर्वत की परिक्रमा है।

इस गिरिराज से अनंत तीर्थंकर अनन्तानंत मुनीश्वर कर्ममल से रहित होकर निर्वाण पधारे हैं। वर्त्तमान चतुर्विंशति तीर्थंकर देवों में से चार तीर्थंकर तो 'हुंडावसर्पिणी' कालदोष से अन्य स्थानों से अर्थात् श्री आदिनाथ भगवान् 'कैलाशगिरि'[1] से श्रीवासुपूज्य 'मंदारगिरि' से श्री नेमिनाथ 'गिरनार' पर्वत से और श्री महावीर स्वामी 'पावापुर' से मोक्ष गये। इन

१. कैलाशगिरि की यात्रा इस काल में अगम्य है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

चारों तीर्थंकरों को टोंके यहाँ भी हैं। शेष २० तीर्थंकर इसी गिरिराज से निर्वाण पधारे। तीर्थराज की महिमा अपार है, गिरिराज से असंख्यात मुनि और तीर्थंकरों मुक्त होने के कारण इन्द्रादिक देवों ने पूजन प्रदक्षिणा करके अपने जन्म को सफल समझा। अब भी गिरिराज पर देवों कृत कई अतिशय हुआ करते हैं। इस परम-पवित्र गिरिराज की वन्दना करने वाला भव्यजीव ४९ भव में अवश्य ही मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त कर लेता है, उसे नरक और पशुगति नहीं होती। पं० 'द्यानतरायजी' ने कहा है :—

एक बार बंदे जो कोई। ताहि नरक पशुगति नहिं होई।।

इस गिरिराज को पृथक्-पृथक् टोकों के माहात्म्य का वर्णन 'सम्मेदशिखर विधान' और 'वृहत्-शिखर माहात्म्य' नामक ग्रन्थ तथा अन्य-अन्य जैनशास्त्रों में विस्तार से कहा है, गिरिराज को वन्दना करने से परिणामों में निर्मलता होती, परिणामों में निर्मलता होने से कर्मबंध कम होता और कर्मों का बन्ध कम होने से और निर्जरा होने से क्रमशः मनुष्य मोक्ष पद को पा सकता है।

लाखों नर-नारी प्रति वर्ष इस तीर्थराज की वन्दना करके मनुष्य जन्म को सफल करते हैं। प्रत्येक जैनी इस पर्वत की वन्दना करने को अपना कर्त्तव्य समझते हैं। सम्मेदशिखर पर चाय की खेती अधिक होती है।

हजारीबाग

राँची से लगभग ५० मील उत्तर हजारीबाग को अच्छी सड़क गई है, छोटा नागपुर विभाग में, जिले का सदर स्थान है। कई छोटे गाँव मिलकर यह कस्बा बसा है। हजारीबाग में सरकारी कचहरियाँ, पुलिस स्टेशन और स्कूल हैं। मनुष्य संख्या अनुमान १७ हजार है, दि० जैनियों के खण्डेलवालों के ३४ घरों की मनुष्य संख्या ९८ है। एक शिखरबंद मन्दिर, जैन पाठशाला और धर्मशाला भी है। अबरक का अधिक व्यापार होता है।

●

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

शोध सारांश

संस्कृत काव्य के विकास में बीसवीं शताब्दी के जैन-मनीषियों का योगदान

—डॉ० नरेन्द्र सिंह राजपूत

अपारे काव्य संसारे कविरेक प्रजापति ।
यथास्मै रोचते विश्वं तथैदं परिवर्तते ॥

अर्थात्—काव्यरूपी संसार का सृजनकर्त्ता कवि ब्रह्मा ही है।

जैसा उसे अच्छा लगता है, वह अपनी कल्पनानुसार काव्य संसार की रचना करता है।

उक्त पद्य के परिप्रेक्ष्य में और विपुल मात्रा में उपलब्ध साहित्य के आधार पर कहा जा सकता है कि काव्य मानव जीवन का आधार है। वह साहित्य और समाज का दर्पण भी है। मानवता का उत्थानकर्त्ता, संस्कृति का सृष्टा और जीवनादर्शों का नियामक "काव्य" ही है।

संस्कृत साहित्य विश्व का समृद्धशाली साहित्य है। अपनी प्राचीनता और सार्वभौमिकता के लिए विख्यात संस्कृत साहित्य की धारा सुदूर प्राचीनकाल से अद्यावधि अक्षुण्ण प्रवाहित है—बीसवीं शताब्दी में संस्कृत साहित्य का सृजन अनवरत हो रहा है—इसे समृद्धि प्रदान करने में समाज के आचार्यों, मूर्धन्य मनीषियों, विद्वानों, कवियों, साधु-साध्वियों का महनीय योगदान है—मौलिक सृजन की दृष्टि से जैन विषयों पर जैन रचनाकारों और जैनेतर विद्वानों ने जो काव्य सृजन करके भगवती वाग्देवो के भव्य भण्डार की महनीय अभिवृद्धि की है किन्तु उसे अपेक्षित (उसके महत्त्व के अनुरूप) अध्ययन, अनुशीलन, प्रसार-प्रचार नहीं मिल सका है—इसलिए इतने बहुविध समृद्ध और उदात्त जीवन मूल्यों के संरक्षक तथा अभिवर्धक संस्कृत जैन काव्य साहित्य के सृजन का मूल्यांकन करके उसे विद्वानों, समीक्षकों, पाठकों, अनुसन्धाताओं और जन सामान्य के बीच सम्प्रेषित करने के महनीय उद्देश्य से मैंने "संस्कृत काव्य के विकास में बीसवीं शताब्दी के जैन-मनीषियों का योगदान" विषय पर शोधकार्य सम्पन्न किया है।

यह शोध ग्रन्थ छह अध्यायों और एक परिशिष्ट में विभक्त है। टंकित ५१२ पृष्ठों में निबद्ध है—इस पृष्ठ संख्या क्रम में प्राक्कथन, कृतज्ञता प्रकाश, विषयानुक्रमणिका को सम्मिलित न करते हुए उक्त शीर्षकों को हिन्दी वर्णमाला क्रमानुसार पृष्ठों में परिगणित किया है।

आधुनिक युगीन चिन्तन, साहित्य और संस्कृति को इतिहास की धरा से सम्पृक्त करने वाले "संस्कृत काव्य के विकास में बीसवीं शताब्दी के जैन मनीषियों का योगदान" ग्रन्थ का अध्यायों के अनुसार संक्षिप्त विवेचन निम्नांकित है—

प्रथम अध्याय

संस्कृत साहित्य का अन्तःदर्शन

"संस्कृत साहित्य का अन्तःदर्शन" नामक प्रथम अध्याय दो भागों में विभाजित है—

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

(खंड अ)

संस्कृत साहित्य का आविर्भाव तथा विकास, संक्षिप्त इतिवृत्त

प्रस्तुत खण्ड में "संस्कृत" शब्द की उत्पत्ति, अर्थ, वाङ्मय प्रणयन के आधार रूप में संस्कृत का उपयोग, देववाणी का महत्त्व, संस्कृत साहित्य के दो रूप—दृश्य काव्य और श्रव्य काव्य। श्रव्य काव्य के अन्तर्गत गद्य, पद्य, चम्पू काव्य का विवेचन। संस्कृत साहित्य के विकास क्रम में वैदिक संस्कृत साहित्य का परिचय तत्पश्चात् लौकिक संस्कृत साहित्य का विस्तृत विवेचन किया गया है।

(खंड ब)

बीसवीं शताब्दी की साहित्यिक पृष्ठभूमि

प्रथम अध्याय के खण्ड ब में बीसवीं शताब्दी की साहित्यिक पृष्ठभूमि के अन्तर्गत विवेच्य शती में संस्कृत काव्य की धारा के बहाव की गति का समग्रतया आकलन किया है और नये सन्दर्भों, नये आयामों के परिप्रेक्ष्य में रचनाकारों पर राष्ट्रीय एकता, आध्यात्मिक, दार्शनिक वातावरण, समसामयिक समस्याओं आदि के प्रभाव का निरूपण करते हुए उनकी सृजन प्रवृत्ति को रेखांकित किया है।

द्वितीय अध्याय

बीसवीं शताब्दो में रचित जैन काव्य साहित्य : एक अन्तर्विभाजन :

इस अध्याय में बीसवीं शताब्दी में रचित जैन काव्य साहित्य का अन्तर्विभाजन किया है। यह अध्याय तीन खण्डों में विभक्त है—

(खण्ड अ)

मौलिक रचनाएँ :

बीसवीं शताब्दो में रचित महाकाव्य, खण्डकाव्य, दूतकाव्य, स्तोत्रकाव्य, शतककाव्य, श्रावकाचार नीतिविषयक काव्य, पूजाव्रतोद्यापन काव्य, दार्शनिक रचनाओं की सूची को (खण्ड अ में) मौलिक रचनाओं के अन्तर्गत समाविष्ट किया है—अद्यावधि ज्ञात मौलिक रचनाओं की संख्या दो सौ सात है। इनमें से प्रतिनिधि रचनाओं का परिचयात्मक विश्लेषण प्रस्तुत शोधप्रबन्ध के तृतीय और चतुर्थ अध्यायों की विषयवस्तु है।

(खण्ड ब)

टीका ग्रन्थ

बीसवीं शताब्दी में रचित लगभग बयासी टीका ग्रन्थों की सूची टीकाकारों के नाम सहित प्रस्तुत की गई है।

(खण्ड स)

अन्य ग्रन्थ

प्रस्तुत शोर्षक के अन्तर्गत बीसवीं शताब्दी में रचित गद्यकाव्य रचनाओं का उल्लेख है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

तृतीय अध्याय

"बीसवीं शताब्दी के साधु-साध्वियों द्वारा प्रणीत जैन काव्यों का अनुशीलन"

इस अध्याय में जैन संस्कृत काव्य और काव्य रचना के मुख्य आधार "द्वादशांगवाणी" पर प्रकाश डालने के उपरांत जैन संस्कृत काव्यों की विशेषताएँ स्पष्ट की हैं। विवेच्य शताब्दी के जैन मनीषियों और उनकी काव्यकृतियों का अनुशीलन करते हुए सर्वश्री आचार्य ज्ञानसागर जी मुनि, आचार्य विद्यासागर जी मुनि, आचार्य कुन्थुसागर मुनि, आचार्य अजितसागर मुनि, आर्यिका सुपार्श्वमति माता जी, आर्यिका ज्ञानमती माताजी, आर्यिका विशुद्धमती माताजी, आर्यिका जिनमती माताजी, क्षुल्लिका राजमती माताजी के महनीय जीवन चरित और कृतित्व का सांगोपांग विश्लेषण किया है।

चतुर्थ अध्याय

बीसवीं शताब्दी के मनीषियों द्वारा प्रणीत प्रमुख जैन काव्यों का अनुशीलन :

प्रस्तुत अध्याय में जैन विषयों पर संस्कृत में काव्य रचना करने वाले जैन और जैनेतर गृहस्थ मनीषियों के रचना संसार का अवलोकन किया गया है। इस दृष्टि से डॉ० पन्नालाल साहित्याचार्य, पं० मूलचन्द्र शास्त्री, पं० जवाहरलाल शास्त्री, पं० दयाचन्द्र साहित्याचार्य, पं० जुगलकिशोर मुख्तार, पं० गोविन्द राय शास्त्री, राजवैद्य पं० वारेलाल जी, पं० ठाकुरदास शास्त्री, प्रो० राजकुमार साहित्याचार्य, डॉ० भागचन्द्र जैन "भागेन्दु", पं० भुवनेन्द्रकुमार शास्त्री, पं० कमल कुमार न्यायतीर्थ, पं० अमृतलाल साहित्य-दर्शनाचार्य, पं० गोपीचन्द अमर, डॉ० नेमीचन्द्र ज्योतिषाचार्य, सिद्धेश्वर वाजपेयी, पं० दामोदर शास्त्री, रामनाथ पाठक 'प्रणयी', पं० बिहारीलाल शर्मा, कु० माधुरी शास्त्री, श्रीमती मिथिलेश जैन, पं० खूबचन्द्र शास्त्री प्रभृति विद्वानों का जीवन-परिचय (प्रत्येक का) एवं उनके काव्य साहित्य का परिचयात्मक/भावात्मक अनुशीलन किया है।

शोध प्रबंध के तृतीय एवं चतुर्थ अध्याय एक दूसरे के पूरक हैं—इन्हें इसी तारतम्य में पढ़ना उपयोगी होगा।

पंचम अध्याय

"बीसवीं शताब्दी के संस्कृत जैन काव्यों का साहित्यिक एवं शैलीगत अध्ययन"

बीसवीं शताब्दी के संस्कृत जैन काव्यों की साहित्य शास्त्र में निर्दशित काव्य के विविध अंगों—रस, छंद, अलंकार, रीति, गुण, वाग्वैदग्ध एवं भाषा शैली की दृष्टि से यथेष्ट शोध-परक समीक्षा की गई है। चित्रालंकारों के अन्तर्गत विविध बंधों की संयोजना, विविध शैलियों की अभिनव संयोजना, लाक्षणिक प्रयोगादि तथ्यों को पंचम अध्याय में सम्मिलित किया गया है।

षष्ठ अध्याय

"बीसवीं शताब्दी के संस्कृत जैन काव्यों का वैशिष्ट्य, प्रदेय और मूल्यांकन"

विवेच्य शताब्दी के जैन रचनाकार इतर रचनाकारों से किन अर्थों में कब और कहाँ-

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कहाँ वैशिष्ट्य रखते हैं। उनका भारतीय संस्कृति, साहित्य, काव्यशास्त्र को समृद्ध बनाने और चरितार्थ करने में किस-किस प्रकार का योगदान है। काव्यशास्त्र के विषय पर बीसवीं शताब्दी की प्रमुख जैन रचनाओं का समीक्षात्मक / तुलनात्मक मूल्यांकन किया गया है।

इस अध्याय के अन्त में जैन काव्यों के बहुआयामी स्वरूप का प्रचार-प्रसार, उनकी उपयोगिता, महत्त्व आदि को रेखांकित करने विषयक शोध कर्त्ता के महत्त्वपूर्ण सुझाव अंकित हैं।

परिशिष्ट प्रथम

प्रस्तुत परिशिष्ट में शोध प्रबंध के निमित प्रयुक्त सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची संलग्न है।

यह शोध प्रबन्ध सम्पूर्ण बीसवीं शताब्दी और उसके रचना संसार को समक्ष रखकर किया गया प्रथम प्रयास है—उनने रचनाकारों के प्रतिपाद्य को हृदयंगम करके इसके पूर्व २०वीं शती पर कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता। वास्तव में जैन रचनाकारों की आभार से सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय सुवासित हो उठा है। इनकी रचनाओं से साहित्य जगत को समाज को अवगत / परिचित कराना, जैन काव्यरत्नों की अभाव से निखारना ही मेरा ध्येय है। २०वीं शती में भी जैन जगत के काव्य क्षेत्र में प्रतिमाएँ महाकवि कालिदास, शुद्रक, अश्वघोष, माघ, भारवि सदृश हैं।

●

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

वृषभाष्टक

—लिप्यन्तर–डॉ० ऋषभचन्द्र 'फौजदार

चिदात्मकं द्विरूपकं त्रिरूपकं चतुष्टयं,
द्विरूपयुक् त्रिरूपकं षडंगभावबोधकं ।
त्रिरूपयुक् चतुष्टयं द्वियुक्तभावषट्ककं,
नवात्मकं दशावतार नायकं मुदा स्तुवे ॥ १ ॥

त्रिलोचनं त्रिलक्षणं सुलक्षणं स्वयंभुवं,
गुणाधिसंगुणाकरं गुणार्णवं विभावसुं ।
अनक्षरं यमात्मकं महीमयं सुखास्पदं,
निरंजन निराकुलं पुरुं जिनं मुदा स्तुवे ॥ २ ॥

अनेकमेकमीश्वरं सदा सदात्मकं शिवं,
सदात्मकं क्रमाक्रमस्वभावकं निरामयं ।
प्रमातृकं प्रमाणकं प्रमेयकं प्रमामयं,
चिरन्तनं प्रजेश्वरं पुरुं जिनं मुदा स्तुवे ॥ ३ ॥

अनीश्वरं महेश्वरं जिनेश्वरं यतीश्वरं,
स्वयंप्रभं स्वयंप्रभुं जगत्प्रभुं दमप्रभुं ।
अनश्वरं स्तुतीश्वरं कृतक्रतुं कृतक्रियं,
शरण्यकं वरेण्यकं पुरुं जिनं मुदा स्तुवे ॥ ४ ॥

निरुद्भवं निराश्रवं जगद्धितं सनातनं,
महामतिं सदागतिं सदोदयं सदाशिवं ।
अरिंजयं महामखं महाक्षयं दयानिधिं,
श्रियो निधिं क्षमानिधिं पुरुं जिनं मुदा स्तुवे ॥ ५ ॥

अबन्धनं प्रभास्वरं मनोहरं निरंबरं,
कलाधरं पराधरं त्रिमूर्ध्नपांसुदर्शनं ।
अयोनिजं जितेन्द्रियं गतस्पृहं समाहितं,
वरप्रदं गिरां पतिं पुरुं जिनं मुदा स्तुवे ॥ ६ ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अगोचरं सुगोचरं शिवप्रदं तमोपहं,
महाबलं मुनीश्वरं विदांवरं महर्द्धिकं ।
अनिंद्रियं बृहस्पतिं महागुणं महाव्रतं,
निरुत्तरं चतुर्मुखं पुरुं जिनं मुदा स्तुवे ॥ ७ ॥

अनंतधर्मसंपदं गुणोत्त्रशुद्धचित्पदं,
कथंचिदेव शब्दगम्य सप्तभङ्ग्यधीश्वरं ।
अहं सदा गुणाप्तये सुनाभिराजनंदनं,
पुरन्दरेण वंदितं पुरुं जिनं मुदा स्तुवे ॥ ८ ॥

(जैन सिद्धान्त भवन, आरा में संगृहीत कन्नडलिपि की ताड़पत्रीय प्रति से लिप्यन्तरित) ।

●

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पं० नलिन विलोचन शर्मा : संस्मरण

—श्री सुबोध कुमार जैन

पं० नलिन विलोचन शर्मा देश के कालजयी साहित्यकार और समालोचक थे। सुप्रसिद्ध नकेनवाद के प्रणेताओं में वे अग्रणी थे। आरा जैन कालेज से निकले शिक्षक-विद्वानों की पंक्ति में भी वो अग्रणी थे। दूसरे प्रसिद्ध साहित्यकार और जैन कालेज से निकले विद्वान आचार्य कुमार विमल के शब्दों में "नलिन जी हिन्दी साहित्य के ही ज्ञाता नहीं विश्व साहित्य में भी उनका अधिकारिक हस्तक्षेप था। सुप्रसिद्ध कवि आर० सी० प्रसाद सिंह के शब्दों में नलिन जी एक आदर्श गुरु, साहित्य और कला के मर्मज्ञ प्रेमी तथा प्रकांड विद्वान थे। उनके चरित्र और व्यक्तित्व में विलक्षणता थी।"

उन्होंने पटना की एक गोष्ठी में जोकि नलिन जी की पुण्यस्मृति में १४ सितम्बर ९२ को आयोजित थो। उसमें कहा—पांडित्य उन्हें विरासत के रूप में मिला था। उनके पिता महामहोपध्याय पं० रामावतार शर्मा कपिल, कन्नाड तथा कालिदास के समतुल्य माने जाते हैं।

तो, आरा जैन कालेज की जब स्थापना हुई, तब पिताजी, बाबू निर्मल कुमार जी की अध्यक्षता में श्री आदिनाथ ट्रस्ट (संस्थापक—बाबू हरप्रसाद दास) ने आरा जिला के प्रथम कालेज बनाने का श्रेय ही नहीं प्राप्त किया, किन्तु बिहार के सर्वश्रेष्ठ कालेज के रूप में जैन कालेज की कीर्ति पताका तबतक बनाकर रखी, जबतक इस कालेज का सरकारीकरण नहीं हो गया।

दूसरी उपलब्धि थी, सर्वश्रेष्ठ आवेदकों को कालेज के प्रोफेसर के रूप में नियुक्ति देश भर से आए आवेदकों में से किया जाना।

देवाश्रम आरा में ही प्रशासनिक सभा की सभी मोटिंग होती थीं। पिताजी सभापति थे। मैंने एक दिन नियुक्ति के समय देखा कि गेट के बाहर एक भारी भरकम शरीर का तेजस्वी व्यक्तित्व चक्कर लगा रहा है। पूछा तो मालूम हुआ कि पं० रामावतार शर्मा जी के पुत्र पं० नलिन विलोचन शर्मा हिन्दी के प्रोफेसर पद के लिए प्रत्याशी के रूप में आए हैं। रामावतार जी का नाम हिन्दी/संस्कृत के विद्यार्थी होने के नाते मुझे ज्ञात था।

मैंने घर के अन्दर मीटिंग स्थल पर जाकर पिताजी तथा समिति के एक सदस्य बाबू सुपारस दास गुप्त से पं० रामावतार शर्मा के सुपुत्र की बात कही। मालूम हुआ कि वे तृतीय श्रेणी में एम० ए० पास किये हुए हैं, इसलिए उन्हें साक्षात्कार के लिए बुलाया ही नहीं गया है। कई हिन्दी फर्स्ट डिविजनर बिहार और उत्तरप्रदेश के भी आये हुए थे। पर पिताजी ने उन्हें अन्त में साक्षात्कार के लिए बुला ही लिया। कमिटी के सदस्यों से साक्षात्कार के उपरान्त जब नलिनजी बाहर चले गये तब उन्होंने कहा—'मुख्य बात तो यह है कि साक्षात्कार से हमारे विशेषज्ञ संतुष्ट हैं। थर्ड डिवीजन में एम० ए० पास पं० रामावतार शर्मा जैसे महान्

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

विद्वान् के योग्य पुत्र को इस नियम से छूट दे देना चाहिए। यह मेरा प्रस्ताव है।' तो विचार विनिमय के उपरान्त स्पेशल केस मानकर उनकी नियुक्ति सर्वसम्मति से हो गई और यह शुभ समाचार मैंने ही जाकर बाहर बैठे नलिन जी को दिया।

तदुपरान्त नलिन जी से हमारा अति घनिष्ठ सम्पर्क हो गया। जैन कालेज में तो हिन्दी के श्रेष्ठतम शिक्षक के रूप में शीघ्र ही प्रतिष्ठित हो गये, आरा नगर तथा फिर पटना तक उनकी कीर्ति बात-बात में फैल गई।

नलिनजी श्री जैन सिद्धान्त भवन बराबर अध्ययन हेतु जाया करते थे। हम लोग वहाँ हिन्दी साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए बराबर कविता, कहानियाँ और विश्व साहित्य पर गोष्ठियाँ आयोजित करने लगे। शीघ्र ही इस संगोष्ठी का नामकरण किया नलिनजी ने 'सोसायटी फॉर कल्चरल रेनासां।'

नलिनजी की पत्नी श्रीमती शर्मा का व्यक्तित्व और डीलडौल नाटा, छोटा और रूपवान था। नलिनजी आगे बढ़ते ही गये। भारतवर्ष में उनकी कीर्ति हिन्दी के मर्मज्ञ विद्वान् और आलोचक के रूप में ऐसी छा गई कि आज भी लोग उनके नाम को सम्मानपूर्वक याद करते हैं।

हमें गौरव है कि उनके निकट सम्पर्क में आने का मुझे मौका मिला।

●

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

स्वामी सत्यभक्त जी, वर्धा का पत्र

(स्वामी सत्यभक्त जी एक चिन्तक हैं। उनका चिन्तन वर्धा मानव समाज के लिए प्रकाश पुंज है। आज अस्वस्थता के समय भी वे सतत चिन्तनशील हैं। भास्कर परिवार उनके दीर्घायुष्य की कामना करता है। मेरे परिवार वालों से स्वामी जी का सम्पर्क रहा है। अभी मेरे पास उनका एक महत्त्वपूर्ण पत्र आया है, जिसे यहाँ यथावत् प्रकाशित कर रहा हूँ।)

—सुबोध कुमार जैन

•

सार्वदेशिक सत्य समाज सम्मेलन, सत्याश्रम, वर्धा

प्रिय सुबोध कुमार जी,

सस्नेह जयसत्य,

आपका ८ तारीख का पत्र विज्ञान के नाम से आया। उसमें मेरे विषय में काफी जानकारी चाही है। इसलिये मैं ही उत्तर दे रहा हूँ।

आपके कुटुम्ब से मैं कई बार परिचय में आया हूँ और आपके घर कई बार ठहरा हूँ। आपके स्वर्गीय दादाजी को भी मैंने देखा है। कुण्डलपुर में महासभा के अध्यक्ष बनकर जब वे आये तब पहिले दमोह में ठहरे थे। क्योंकि ट्रेन दमोह तक ही थी। बाद में २२ मील सड़क से जाना पड़ता था। दमोह में वे गोकुलचन्द्र वकील जो कि मंत्री और मेरे चाचा लगते थे, वहीं ठहरे थे तब मैंने उनको देखा था। इसके बाद कुण्डलपुर की सभा में देखा। मेरे मामा उस समय कुण्डलपुर तीर्थ के मुनीम थे। मैं उन्हीं के यहाँ ठहरा था। देवकुमार जी के ठाठ राजाओं सरीखे थे। मैं उस समय सभा में गया था। देवकुमार जी अध्यक्ष के आसन पर जब बैठे थे तब उनका एक सिपाही कन्धे पर नंगी तलवार लिये उनकी रक्षा के लिये खड़ा रहता था। उस समय मैंने सुना था कि वे बहुत से गाँव के बहुत बड़े जमींदार हैं और जमींदारी से उन्हें सालाना एक लाख रुपया मिलता है। जिन दिनों ३२/-रुपये मन घी मिलता हो तो उस समय एक लाख रुपये की आमदनी राजाओं की आमदनी समझी जाती थी। इसके कुछ माह बाद मैंने सुना कि देवकुमार जी का देहान्त हो गया। इससे आश्चर्य के साथ बहुत दुःख हुआ। इसके बाद सन् १८ या १९ में मैं बनारस से १०-१२ दिन के लिये आरा आया था। उस समय आपकी दादी जीवित थीं और निर्मलकुमार जी किशोर थे। आपकी दादी बहुत प्रेम से भोजन कराती थीं। उस समय आपका घर नौकर-चाकरों से भरा रहता था। मुझे अच्छी तरह याद है कि ऊपर की मंजिल से कोई महिला किसी नौकर को बुलाती थी तो बिहारी टोन में लहराती आवाज में आवाज देती थी "अरे! कोई प्यादा है"।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

उस समय जैन सिद्धान्त भवन प्रारम्भिक अवस्था में था और मैंने देखा था। इसके बहुत वर्षों बाद जब मैं बम्बई में अध्यापक था तब सेठ ताराचन्द जी के साथ सम्मेदशिखर आया था। वहाँ बहुत बड़ा रथोत्सव था। उस समय निर्मलकुमार जी सेठ ताराचन्द जी और मुझे आरा लाये थे और आपके घर ही ठहरे थे। उस समय की एक घटना मुझे याद है। निर्मलकुमार जी के घर में एक लड़का जन्म से बहरा था। ऐसे लोग किसी की बात सुन नहीं सकते इसलिये कोई भाषा सीख नहीं सकते। मुँह से आवाज निकाल सकते हैं पर कोई भाषा नहीं बोल सकते। उस समय निर्मल जी ने एक ऐसा अध्यापक बुलाया था जिसने उसे (गूँगे लड़के को) बोलना सिखा दिया था। वह सुन तो नहीं सकता, पर आदमी के ओठों को देखकर जान लेता था कि क्या कहा गया है। अगर कोई कुछ नहीं बोले, सिर्फ बोलने के ओठ ही चलाये तो समझ लेता था कि क्या कहा है। अध्यापक ने इसके प्रयोग हम लोगों के सामने भी करके दिखाये। हमें बड़ा आश्चर्य हुआ। शायद वह तुम्हारा बड़ा भाई होगा। अब क्या हाल है हमें नहीं मालूम। अब इसके कुछ वर्ष बाद निर्मलकुमार जी और उनकी चाची चन्दाबाई जी जो विख्यात विदुषी थी, बम्बई आये और श्राविकाश्रम में ठहरे। मैं भी श्राविका आश्रम के पास ठहरा था। उस समय कई बार मिलने और चर्चा करने का अवसर आया।

ब्र० शीतलप्रसाद जी को मैं अच्छी तरह जानता हूँ। वर्षों तक उनसे अच्छा सम्बन्ध रहा है। उन्होंने जब विधवा विवाह का आन्दोलन किया था तब उनके विरोध में पंडित लोग जो भी लिखते थे उसका उत्तर मैं ''सव्य साची के नाम से मैं ही देता था। जीवन के अन्त में जब उन्हें कम्पबाय हो गया था और लखनऊ में अजित प्रसाद जी वकील के यहाँ पड़े रहते थे तब भी उनसे मिला था। जब मैं उनके यहाँ मेहमान था। कम्पबाय के कारण वे साफ बोल नहीं सकते थे। मेरी बड़ी तारीफ करते थे।

चन्दाबाई जी स्त्रियों के लिये एक पत्र निकालती थीं। वह जैन जगत् के परिवर्तन में मेरे पास आता था इसलिये भी उनसे परिचय था। सबको आशीर्वाद।

सत्याश्रम, वर्धा
२९-६-९३

आपका
—सत्यभक्त

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

समीक्षा

मुनि केशराज ऋषिकृत जैन रामायण पर प्राप्त समीक्षाएँ*

श्री देवकुमार जैन ओरियंटल लायब्रेरी, श्री जैन सिद्धान्त भवन, देवाश्रम, आरा, बिहार ने मुनिश्री केशराज ऋषि द्वारा प्रणीत चित्रकथा प्रधान "रामयशो रसायन रास" नामक रामकथा का नयनाभिराम उत्तम मुद्रण प्रकाशन किया है।

रचना हस्तलिखित है जिसे ज्यों की त्यों मुद्रित किया गया है। सम्पूर्ण कृति सचित्र है। प्रत्येक छन्द प्रसंग को सत्रहवीं शती की मारवाड़ी शैली में चित्रित किया गया है। इस प्रकार कृति का प्रकाशन जहाँ एक ओर अपनी प्राचीन धज को सुरक्षित किये हुए है वहीं दूसरी ओर तत्कालीन चित्रकला का भी उजागरण करती है।

कृति के प्राक्कथन में भारतीय कला भवन, काशी विश्वविद्यालय, वाराणसी के सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ० राय आनन्द कृष्ण जी ने लिखा है कि ग्रन्थ में तीस रागों में दोहा छन्द का प्रयोग हुआ है तथा अन्तिम ढाल बासठ है। ढालें भी भिन्न-भिन्न रागों में हैं। इसके रचनाकार केशराज ऋषि हैं। भाषा जैन प्रभावयुक्त मध्यकालीन ब्रजभाषा है, जिसका प्रचार-प्रसार बहुत व्यापक क्षेत्र में तथा लम्बे काल तक हुआ, परन्तु यह राजस्थान और उसके निकटवर्ती क्षेत्रों में बहुत प्रचलित थी।

जैन साहित्य में भारतीय और बृहत्तर भारतीय समस्त परम्पराओं का समावेश है। इसी प्रकार ऐसा कौन सा विषय है जिस पर जैन शास्त्रकारों ने प्रमाणित रूप से प्रणयन न किया हो।

इसी प्रकार श्री देवकुमार जैन ओरियंटल लाइब्रेरी के मानद मन्त्री श्री अजयकुमार जैन ने अपने प्रकाशीय में लिखा है कि हिन्दू, बौद्ध और जैन इन तीनों ही धर्मावलम्बियों में रामकथा अपने-अपने ढंग से लिखी गई है और तीनों ही धर्मावलम्बी राम को अपना आदर्श पुरुष मानते हैं। विवेच्य कृति में श्री राम का आदर्श जीवन वृत्त जैन परम्परा के अनुसार चित्रित है।

ग्रन्थारम्भ में सम्पादकीय अंग्रेजी भाषा में डॉ० ज्योति प्रसाद जैन द्वारा लिखित उसके गौरव का अभिवर्द्धन करती है। ऐसे महत्त्वपूर्ण, आकर्षक काव्य-कला का प्रकाशन सभी विधा केन्द्रों तथा प्रतिष्ठानों में पहुँचना चाहिए, जहाँ से लोगों में विधा के संस्कार प्राप्त होते हैं। ऐसे विरल और बेजोड़ कलात्मक प्रकाशन के लिए मेरी बहुत-बहुत बधाइयाँ।

●

---

* जय कल्याण श्री आत्मोदय की मासिकी पत्रिका का संयुक्तांक १९९१-१९९२ के अगस्त एवं सितम्बर के अंक से साभार) समीक्षक—डॉ० महेन्द्र सागर प्रचंडिया, डी० लिट्०

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सचित्र जैन रामायण पर सम्मतियाँ

श्री डॉ० रंजन सूरिदेव, पी० एन० सिन्हा, कॉलोनी, भिखना पहाड़ी, पटना

जैन रामायण विषय और कलावरेण्य मुद्रण की दृष्टि से श्री जैन सिद्धान्त भवन की महार्घ सारस्वत उपलब्धि है। यह ऐतिहासिक एवं कोशशिलात्मक कार्य आपकी प्रबन्धकीय प्रयत्न-तत्परता का अविस्मरणीय अध्याय होगा।

श्री प्रताप सिंह वैद, महावीर आटो पार्ट्स, महावीर भवन, श्रीलाल मार्केट, सिलीगुड़ी--७३४४०१

जैन रामायण देखकर गद्गद् हो गया। आपने जैन जगत में एक बड़ा काम किया है।

Willam Clark, Jr., Ambassador of The United States of America, New Delhi.

I have now personally reviewed the Jain Ramayan. It is a beautiful book.

Rajendra Kumar Jain, 94–Aremdia, Nariman Point, Bombay.

I am indeed grateful to you for the wonderful book titled Jain Ramayan". It is an immortal publication and would ever be remembered. My heartiest congratulations to you and to your family for having accomplished such an excellent task.

डॉ० राय आनन्द कृष्ण, भारतीय कला भवन, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय

यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि सचित्र जैन रामायण का लोकार्पण समारोह महामहिम डॉ० शंकर दयाल जी शर्मा द्वारा सम्पन्न हुआ। बधाई। यह एक महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ।

राजेश जैन धन्नू, व्यवस्थापक, वीर जैन पाठशाला, देवघर जि०--दुर्ग

जैन रामायण (रामयशोरसायन रास) नामक अद्वितीय ग्रन्थ के प्रकाशन पर हार्दिक बधाई। ऐसी पुस्तकों का अधिकाधिक प्रसार हो ताकि उसका सदुपयोग हो सके।

Sri. G. C. Jain 15--D. Block-F, Saket New Delhi--110017

I was very glad to receive the Jain Ramayan. It is berutiful and I must congratulate you for bringing lout. The originals are very valuable and I would suggest that the same may be suitably protected.

डॉ० नेमीचन्द जैन, ६५--पत्रकार कालोनी कनोड़िया मार्ग, इन्दौर-४५२००१

पत्र के साथ "जैन रामायण" की एक प्रति भी है। हार्दिक बधाई—इतने सुसमृद्ध / सुरुचिपूर्ण, अलभ्य/अविस्मरणीय प्रकाशन के लिये।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक का नाम—संस्कृत शतक परम्परा और आचार्य श्री विद्यासागर के शतक।

लेखिका—श्रीमती डॉ० आशालता मलैया।

प्रकाशन—जयश्री आयल मिल्स, दुर्ग (म० प्र०)।

यह गौरव की बात है कि यह लेखन सागर विश्वविद्यालय, सागर के द्वारा १९८४ ई० में शोध प्रबन्ध के रूप में स्वीकृत हो गया और १९८९ ई० में इसका प्रकाशन भी हो गया।

मुझे भी पूज्य मुनिश्री के दर्शनों का तथा उन्हें आहार देने का सौभाग्य ही नहीं, उनके वचनामृत पान का भी सौभाग्य, पूज्य आचार्यश्री के ईसरी (सम्मेदशिखर) प्रवास के समय, मिला। दर्शनों तथा आहार देने वाले श्रावकों की भारी भीड़ और उनकी अपार भक्ति को परिलक्षित कर मैं विभोर हो गया।

पिछले वर्ष हमारे पास पूज्य आचार्यश्री के संघ से श्री जैन सिद्धान्त भास्कर के अनेक पुराने अंकों की माँग आई, तो मुझे और भी प्रसन्नता हुई। मैंने अपने शुभेच्छु हजारीबाग वाले सोगानी जी के माध्यम से भास्कर की फाइल भेज दी। इससे ही स्पष्ट हो जाता है कि पूज्य आचार्यश्री के मुनि संघ में अध्ययन, अध्यापन की कितनी चाव है।

इसी प्रवृत्ति के कारण पूज्य आचार्यश्री द्वारा काव्यों और मूकमाटी जैसे महाकाव्य का प्रणयन हुआ है।

शासकीय कन्या महाविद्यालय की अध्यक्षा (संस्कृत विभाग) द्वारा आचार्यश्री विद्यासागर जी के शतक पर शोध प्रबन्ध लिखा जाना और सागर विश्वविद्यालय द्वारा उसे स्वीकार किया जाना एक ऐसी घटना है, जिसे कभी भुलाया नहीं जायेगा।

साथ-साथ संस्कृत परम्परा का भी विवेचन श्रीमती मलैया ने करके संस्कृत साहित्य का भी मूल्यांकन कर अपनी शोध-प्रवृत्ति को भी उजागर किया है। जिसके लिए उन्हें धन्यवाद और साधुवाद देना ही चाहिए।

आचार्यश्री के द्वारा रचित संस्कृत में ५ शतकों का विवेचन महत्त्वपूर्ण बन गया है।

१. श्रमण शतकम्, २. भावना शतकम्, ३. निरजंजन शतकम्, ४. परीषह-जये-शतकम् और ५. सुनीत शतकम्।

उनकी जो ५ कृतियाँ हैं, उनका परिचय दिया गया है।

यह प्रकाशन हर लाइब्रेरी में रहना चाहिए।

—सुबोध कुमार

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पुस्तक का नाम—**मूकमाटी—एक दार्शनिक महावृत्ति।**

लेखक— **डॉ० भागचन्द्र जैन "भास्कर"।**

प्रकाशक— **बनवारीलाल, बंशीधर जेजानी, चैरिटेबुल ट्रस्ट इतवारी, नागपुर।**

'मूकमाटी' आचार्य श्री विद्यानन्द द्वारा रचित दार्शनिक महाकाव्य है। मूल रचना की भूमिका श्री लक्ष्मीचन्द जैन ने लिखी थी और श्री जैन सिद्धान्त भास्कर में यह समीक्षित हो चुकी है।

प्रस्तुत प्रकाशन/लेखक अन्य समीक्षाओं की श्रृंखला में नवीनतम है। लेखक, आचार्यश्री, कन्नड़ भाषा-भाषी होते हुए भी हिन्दी पर उनका असाधारण अधिकार है। उनकी वृत्तियों से प्रभावित होकर मुनियों-साधुओं द्वारा भी लेखन की प्रवृत्ति को बहुत प्रेरणा मिली है। श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन द्वारा मूकमाटी की भूमिका पठनीय है और संक्षेप में ग्रन्थराज का उनके द्वारा मूल्यांकन भी परम उपयोगी है। बृहद् रूप में डॉ० भास्कर द्वारा वह और भी विशिष्ट बन पड़ा है और अध्ययनशील व्यक्तियों द्वारा पठनीय है।

—सुबोध कुमार

●

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

दिगम्बर जैन मुनि संघ के आरा में चातुर्मास के शुभ अवसर पर वितरित

अहिंसा परमो धर्मः

वर्तमान वैज्ञानिकों की सम्मति जल छानकर पीना परम धर्म है

जल में जीव

पाठकवृन्द जो ऊपर चित्र देख रहे हैं, वह जल में रहनेवाले सूक्ष्मतर ऐसे बारीक त्रस जीवों का है जिनको कोई भी मनुष्य आँखों से नहीं देख सकता। वर्तमान समय के सुप्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता कैप्टन स्कवोर्सबी ने इनको दूरबीन (सूक्ष्म दर्शक यंत्र) से देखकर इनका फोटो लिया है उसी की यथार्थ नकल ऊपर दी गई है। आपने इन सूक्ष्म जन्तुओं की संख्या ३६४५० बतलाई है। यह संख्या पानी के एक सबसे छोटे बिन्दु में जलचर त्रस जीवों की है। इलाहाबाद गवर्नमेन्ट प्रेस से एक पुस्तक 'सिद्ध पदार्थ विज्ञान' नाम को प्रकाशित हुई है उसमें कैप्टन साहब का पूरा मत दिया है तथा उपर्युक्त फोटो भी वहाँ दिया है। अनेक वैज्ञानिकों का अब यह कहना है कि पानी हमेशा छानकर ही पीना चाहिये। क्योंकि बिना छाने पानी पीने से कभी-कभी सूक्ष्म जन्तु पेट में जाकर अनेक भयानक बीमारियाँ उत्पन्न कर देते हैं। अतः इन विषैले रोगोत्पादक जन्तुओं के विष से बचने के लिए छानकर पानी पीना परम आवश्यक है। महाराज मनु ने पानी छानकर पीने का ही उपदेश दिया है। यथा—

दृष्टि पूतं न्यसेत्पादं, वस्त्र पूतं जलं पिवेत्। मनुस्मृति अ० ६-४६

अर्थात् जमीन को देखकर चलो और वस्त्र से छानकर पानी पीओ अन्यथा सूक्ष्म जीव को मारने के अपराधी बनोगे। श्री स्वामी दयानन्दजी ने भी सत्यार्थप्रकाश के तीसरे समुल्लास में पानी छानकर ही पीने का उपदेश दिया है। अतः धार्मिक और वैज्ञानिक सभी विद्वानों की सम्मति में पानी छानकर पीना परम कर्तव्य है।

छने हुए जल की मर्यादा ४८ मिट को है। उसमें लवंग आदि तीक्ष्ण पदार्थ उचित मात्रा में डाल देने से वह जल छः घंटे तक पेय रहता है। थोड़े गर्म किये हुए पानी की मर्यादा १२ घंटा तथा उबाले हुए पानी की मर्यादा २४ घंटे की होती है।

अतः स्वास्थ्य एवं जीव दया के रक्षार्थ शुद्ध स्वदेशी दोहरे वस्त्र से छानकर पानी का उपयोग करना चाहिए।

कार्तिक कृष्ण अमावस्या | निवेदक—
दिनांक ९-११-१९६९ | सुमेर चन्द जैन, आरा

१. निवेदक सुप्रसिद्ध केमिकल इन्जीनियर थे। जनसाधारण के लाभ हेतु उनकी स्मृति में यह उपयोगी होने से पुनः प्रकाशित कर रहे हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जय बाहुबली-जय महामस्तकाभिषेक, १९९३

—श्री सुबोध कुमार जैन

भगवान बाहुबलि महामस्तकाभिषेक १९९३ की यात्रा मेरे जीवन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अनुभव हुआ है। पुत्र अभय और एक अत्यन्त बली स्वयंसेवक ने दोनों बगल से मुझे ऐसा सहारा दिया कि मैं बातोंबातों में सैकड़ों सीढ़ियाँ पर इस प्रकार चढ़ गया जैसे कुछ भी नहीं हो।

मुझे तो ऐसा बाद में लगा कि भगवान भुजबली बाहुबलि ने स्वयं सहारा दिया हो।

लिफ्ट की घोषणा की गई थी। मित्र नीरज जी ने जब मंच को छोड़ मेरे पास आकर बताया कि वह प्रबन्ध सफल नहीं हुआ तो मैं हतप्रभ हो गया कि महामस्तकाभिषेक करने की महीनों पूर्व सारी तैयारियाँ करके अपनी सुविधा के लिए ६ व्यक्तियों को आरा से लेकर सुदूर कर्नाटक / श्रवणबेलगोला पहुँचकर क्या महामस्तकाभिषेक चूक जाऊँगा ? तो दूसरे ही क्षण अभय के कन्धे पर बायाँ हाथ रखकर चल पड़ा हजारों भक्तों के क्यू में।

नीरज जी ने कर्नाटक के एक नवयुवक स्वयंसेवक को बुलाया, मुझे दाहिनी ओर से सहारा देने के लिये तो मैंने उन्हें मना किया, कहा—'मैं चला जाऊँगा' और मैं अभय कुमार के सहारे क्यू में बाहुबलि की जयकार करते हुए चल पड़ा। गन्तव्य की ओर देखा—बाहुबलि भगवान की चमत्कारी मुस्कुराहट मुझे बुला रही है—बेटे, चल पड़ो।

अभय कुमार ने अपने दाहिने हाथ से मेरे को यूँ सँभालते हुए सहारा दिया कि मुझे विश्वास हो गया कि मैं अवश्य पहुँचूँगा। अवश्य महामस्तकाभिषेक करूँगा। आश्चर्यचकित और चिन्तित मेरी पत्नी शान्ता, पुत्रियाँ जया और मधु मेरे पीछे चुपचाप आगे बढ़ चलीं। उन्होंने सभी ने मेरे निर्णय को पत्थर की लकीर समझ लिया। तभी नीरज जी ने बिल्ला कमीज में लगाए हुए उस नवयुवक स्वयंसेवक को आदेश दिया—चूकना मत, और मुझे तथा मेरे परिजनों को क्यू से अलग करते हुए स्वयंसेवक ने सभी को आगे बढ़ने का आदेश दिया।

क्यू से अलग क्या हुए कि उस बाहुबल स्वयंसेवक तथा अभय के सहारे मुझे तो जैसे पंख लग गए। लोहों के पाइपों से निर्मित उस विशाल मंच पर चढ़ता हुआ मैं जब ऊपर भगवान के बगल में उनके भव्य मुखड़े के बगल में पहुँचा तो मुझे लगा कि मैं संसार के शिखर पर पहुँच गया हूँ।

और स्वयंसेवक द्वारा दिये गये कलश को सम्भाल कर मैं विभोर हो गया। भगवान बाहुबलि की बाल सुलभ भीमकाय को और उनकी बाल सुलभ अपूर्व मुस्कुराहट को देखकर जय बाहुबलि, जय कर्नाटक और जब—महामस्तकाभिषेक हम सभी ने कर लिया तो मेरी खुशियों का ठिकाना नहीं था।

महामस्तकाभिषेक के विषय में ४ उपयोगी पत्रों को भी इस लेख के अन्त में प्रकाशित कर रहा हूँ। पू० चारुकीर्त्ति भट्टारक जी महाराज तथा साहु अशोक कुमार जी से जो लिखी-पढ़ी हुई थी, वे भविष्य के महामस्तकाभिषेक के समय भी उपयोगी सिद्ध होंगे।

●

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अशोक कुमार जैन

अध्यक्ष

गोमटेश्वर भगवान बाहुबली महामस्तकाभिषेक महोत्सव समिति १९९३

प्रिय सुबोध कुमारजी, जुलाई, १०,१९९३

सादर जय जिनेन्द्र !

आपका पत्र प्राप्त हुआ। महोत्सव के सम्बन्ध में आपके सुझाव बहुत सुन्दर हैं। जैसे ही सरकारी कार्रवाई पूरी हो जायेगी, ठहरने के पूरे इन्तजाम का नक्शा सहित पूरा विवरण सभी जैन पत्र-पत्रिकाओं में छपवा दिया जायेगा ताकि पूर्व आरक्षण करने में असुविधा न हो और लोगों को यह विश्वास हो जाय कि उन्हें श्रवणबेलगोला में ठहरने में कोई असुविधा न होगी।

इस प्रकार दो प्रकार की कैंटीन लगाई जा रही है जिसमें पहला उत्तर भारत के भोजन का व दूसरा दक्षिण भारत के भोजन का—यानि दोनों प्रकार का भोजन वहाँ उपलब्ध कराया जायेगा।

शुभ कामनाओं सहित,

आपका,

अशोक कुमार जैन

भगवान बाहुबली स्वामी

महामस्तकाभिषेक महोत्सव १९९३

एस० डी० जे० एम० आई० मेनेजिंग कमिटी

श्रवणबेलगोला ५७३ १३५, कर्नाटक

परम प्रिय धर्मबंधु, दिनांक-२३-८-९३

अनेकों शुभाशीर्वाद।

आपका पत्र दिनांक ११-८-९३ प्राप्त हुआ। समाचार जाने। हार्दिक प्रसन्नता हुई। आपका पत्र ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। इस पत्र को हमने क्षेत्र की पाक्षिक पत्रिका "गोम्मटवाणी" में प्रकाशनार्थ भेजा है। सम्पादित होकर छपेगा।

आप जैसे वयोवृद्ध महानुभावों के आगमन से महोत्सव यशस्वी होगा। यह महामस्तकाभिषेक इस शताब्दी का अन्तिम महामस्तकाभिषेक होगा। आप इस शुभावसर पर अभिषेक करेंगे। यह वास्तव में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है।

आपकी मनोभावना का आदर करते हुए पंचामृताभिषेक की दस दिवसीय व्यवस्था के बारे में विचार-विमर्श करेंगे और जैसा भी उचित होगा, आपको सूचित किया जाएगा।

आपके परिवार के सभी सदस्यों को हमारा शुभाशीर्वाद।

स्वस्ति श्री चारुकीर्ति भट्टारक स्वामी जी

अध्यक्ष, एस० डी० जे० एम० आई०

मैनेजिंग कमेटी, श्रवणबेलगोला

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

श्री चारुकीर्ति भट्टारकजी महाराज १६-७-१९९३

श्रवणबेलगोला–५७३१३५

जिला–हासन

राज्य–कर्नाटक

श्रद्धेय चारुकीर्ति भट्टारकजी महाराज को आरा से सुबोध कुमार जैन का सादर सविनय जय जिनेन्द्र !

मैं आपको २/३ माहपूर्व ही पत्र लिखकर धर्मशाला, महामस्तकाभिषेक के लिए, ठहरने के लिए कमरे का आरक्षण करा चुका हूँ। जिसके लिए आपको फिर धन्यवाद देता हूँ।

आपने मुझे महामस्तकाभिषेक प्रबन्ध समिति का सदस्य मनोनीत किया है। पर मुझे खेद है कि मैं पिछले मीटिंग में भाग नहीं ले सका। हमारी आयु ७२ वर्ष की हो चुकी है और स्वास्थ्य भी पूरे ढंग से ठीक नहीं है। जिसके कारण आवागमन का प्रोग्राम कम बनता है।

दस साल पूर्व जब महामस्तकाभिषेक हुआ था, उस समय मुझे आरा नगर में जब महामस्तकाभिषेक कलश का बृहद जुलूस आया था, उस समय मैंने कलश की बोली लेने का सौभाग्य प्राप्त किया था। परन्तु हमारे ज्येष्ठ पुत्र, उसकी बहू और बच्चों के महामस्तकाभिषेक के समय, आग्रह करने पर मैंने उन्हें ही महामस्तकाभिषेक में भाग लेने के लिए उन्हें ही स्वीकृति दे दी और उनका सौभाग्य था कि उन लोगों ने महामस्तकाभिषेक पर भगवान बाहुबलि के कलशों से धारा करने का सुअवसर प्राप्त हो गया।

मैं तीन बार श्रवणबेलगोला जाकर सपरिवार बाहुबलि के चरणों के धारा करने का सौभाग्य प्राप्त कर चुका हूँ। लेकिन महामस्तकाभिषेक में भाग लेने का अवसर अब तक नहीं मिला था और इस वर्ष आप लोगों ने महामस्तकाभिषेक कमेटी का सदस्य बना लिया है, और आयु ७२ वर्ष की हो चुकी है तो सपत्नीक गोम्मटेश्वर की यात्रा कर महामस्तकाभिषेक करने के भाव हुए हैं। हमारे साथ हमारे पुत्र अजय कुमार जैन सपत्नीक रहेगा। इसमें हमको तो सुविधा होगी ही, उसे भी सपत्नीक अभिषेक करने का सौभाग्य प्राप्त हो जायगा।

पूज्य चारुकीर्ति भट्टारकजो महाराज ११-८-१९९३

श्रवणबेलगोला

जिला–हासन

स्टेट–कर्नाटक

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

श्री सुबोध कुमार जैन का आरा से महाराज जी को सादर जय जिनेन्द्र ।

द्वितीय नेशनल प्राकृत कानफरेंस की सफलता के लिए आपको हार्दिक बधाई भेज रहा हूँ।

आपके द्वारा अनेक उपयोगी कार्यक्रम सम्पन्न किये जा रहे हैं। आपके पूर्व पूज्य भट्टारकजी के समय में मैं पिछली बार गया था और उसके पूर्व दोबारा पूज्य भट्टारक नेमीचन्दजी के शासनकाल में गया था। उस समय वहीं बहुत धूम-धाम से उन्होंने हम सभी भाइयों का जनेऊ-संस्कार करवाया था। सम्भवतः १९३३ की बात है, जबकि मैं १४ वर्ष का था। एक सप्ताह तक केस मुण्डन कराकर गेरुए वस्त्र में गाँव में भिक्षा माँग कर भोजन करने का सुख उठाया था। पीपल के वृक्ष की पूजा हमसे कराई गई थी और ऐसे पूजन संस्कार उन्होंने कराया था जो पहले कभी नहीं की थी। आपको मालूम ही होगा कि पूज्य भट्टारक नेमी सागरजी वर्णी हमारे पितामह राजर्षि बाबू देवकुमारजी के साथ अनेक वर्षों तक रहे थे और पूज्य पितामहजी के मृत्यु के समय उन्होंने ही कलकत्ते में सब कुछ त्याग कराकर समाधि-मरण करवाया था।

अब २० दिसम्बर के महामस्तकाभिषेक में हम लोग सपरिवार आ रहे हैं और महामस्तकाभिषेक करने व आप सभी मुनियों-त्यागियों के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त होगा।

दिगम्बर बीसपंथी आम्नाय के अनुसार १०८ या साधारणतया जलधारा में पूर्व पंचरसों की धारा करने का नियम है परन्तु मुझे जानकर आश्चर्य हुआ कि १० वर्ष पूर्व जो महा-मस्तकाभिषेक हुआ था, उसमें १००८ जल अभिषेक के उपरान्त पंचरसों की धारा हुई थी। इसमें दूसरी हानि यह है कि सन्ध्या तक पंचरसों की धारा देखने का सुख उठाने के लिए शाम तक ठहरने में बहुत लोगों को परेशानी होती है। इस विषय पर आप लोगों को विचार करना चाहिए ताकि १००८ कलशों के पूर्व ही पंचरसों की धारा हो।

दूसरी बात यह है कि जबकि हमारे लिए कलश का आबंटन २० तारीख के लिए किया गया है तो २० तारीख तक या उसके बाद जितने लोगों के लिए कलशों का आबंटन १९ तारीख के बाद की तिथियों का आबंटन होगा, उन लोगों को पंचरस की धारा देखने को मिलना चाहिए। मुझे विश्वास है कि इसका भी प्रबन्ध आपने किया होगा। अगर ना किया हो तो अवश्य कीजिएगा। बिना पंचरस की धारा किये हुए मात्र जल की धारा करने का ना तो विधान है और ना दूध, गंध, दही, केसर आदि की धारा देखने का सुख ही मिलेगा। ऐसा अन्याय नहीं होना चाहिए। कृपया अवश्य साहुजी के तथा अपने कमेटी वाले को पत्र लिखियेगा। मैं भी साहुजी को पत्र लिख रहा हूँ। जैनियों का यह महाकुम्भ है और १० वर्षों के बाद होता है इसलिए कम से कम १० दिन तक नित्य आप अपने कमेटी की ओर से पंचरस तथा जल की धारा होनी चाहिए ताकि कोई व्यक्ति निराश होकर ना लौटे और सब लोग अपने-अपने निर्धारित तिथि पर आकर मस्तकाभिषेक करने का गौरव और पुण्य प्राप्त हो।

पत्रोत्तर की प्रतीक्षा में तथा शुभकामनाओं के साथ, सादरपूर्वक

आपका

सुबोध कुमार जैन

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

भवन में १९ शास्त्र भण्डारों की पुरानी सूची

श्री जैन सिद्धान्त भवन ग्रन्थागार में अन्य राज्यों के शास्त्र भण्डारों में रखी हस्त-लिखित ग्रन्थों की सूची—

१. बाबू हरीदास के शास्त्रों की सूची।
२. सूची बाबू गुणेन्द्र प्रसाद जी।
३. श्री १०८ वीरसेन जी के मठ के कन्नड़ी ग्रन्थों की सूची।
४. दौरवली जिनदास जी शास्त्री—श्रवणबेलगोला।
५. हुमुंच मठ के ग्रन्थों की सूची।
६. सूची बाबू लक्ष्मीचन्द जी।
७. श्री श्रवणबेलगोला मठ के ग्रन्थों की सूची।
८. कैनड़ा प्रान्त की सूची।
९. संस्कृत प्राकृत सटीक ग्रन्थों की सूची।
१०. कारंजा के भट्टारक श्री वीरसेन जी के मठ के ताड़-पत्र कर्णाटकी ग्रन्थों की सूची।
११. आमेर (जयपुर) के भट्टारक श्री महेन्द्र कीर्ति के भण्डार के ग्रन्थों की सूची।
१२. मन्दिर जी संगही जी का (जयपुर) ग्रन्थों की सूची।
१३. श्री कारंजा सेनगढ़ मठ।
१४. सूची बाबू श्रेयांस दास जी।
१५. कारंजा के भट्टारक श्री वीरसेन जी के मठ के कर्णाटक की ग्रन्थों की सूची।
१६. ताड़-पत्र पर लिखे कर्णाटक की ग्रन्थों की सूची।
१७. हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची दिगम्बर जैन उदासीनाश्रम, इन्दौर।
१८. सोन्यागंज भुसावल आदि मन्दिर के ग्रन्थों की सूची।
१९. वर्द्धमान जी श्रवणबेलगोला, मैसूर।

पुस्तकालय अधीक्षक
श्री जैन सिद्धान्त भवन, आरा
दिनांक ३०-१२-९३

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

स्व० राजर्षि बाबू देवकुमार जी दिगम्बर जैन महासभा का संस्मरण ८५ वर्ष पुराना

—स्वामी सत्यभक्त, वर्धा

वीर सं० २४२२ तदनुसार ई० सं० १८९६ के भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा का अधिवेशन मथुरा के राजा लक्ष्मण दास के सभापतित्व तथा बैरिस्टर चम्पतराय के महा-मंत्रित्वकाल में हुई / बाबू देवकुमार जी, आरा इस संस्था के कुण्डलपुर अधिवेशन के पाँचवें अध्यक्ष सन् १९०७ में हुए और १९०८ तक रहे। इन्होंने बड़ी भारी कीर्ति पाई। श्रद्धेय स्वामी सत्यभक्त ने अपने पत्र में मुझे पूज्य दादा बाबू देवकुमार जी, मैं कुण्डलपुर अधिवेशन तथा आरा की अपनी यात्रा का अन्तरंग विवरण लिखकर भेजा है जो कि महत्वपूर्ण दस्तावेज है। संभवतः स्वामी जी आज ऐसे व्यक्ति विशेष हैं जो कि ई० सन् १९०८ की ८५ वर्ष पुरानी स्मृति को सँजोकर अभी तक रखे हुए हैं। हम उनके इस पत्र को उपहार मानते हैं। हमारी शुभकामना है कि स्वामी सत्यभक्त जी, उनका सत्य समाज तथा उनकी संगम पत्रिका अमर रहे—

—सुबोध कुमार

स्वामी सत्यभक्त जी वर्धा का संस्मरणात्मक ऐतिहासिक पत्र।

Ac. Gunratnasuri MS
Jin Gun Aradhak Trust

नयनों को प्यारे
और ताजे सुगन्ध भरे,
पकवानों को अर्पित कर फूला ना समाता हूँ।
तीर्थंकर पद·······
[ॐ ह्रीं·······नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा]

जिनके प्रकाश से,
नष्ट हुआ अन्धकार,
ऐसे उल्लासमय दीपों को जलाता हूँ।
तीर्थंकर पद···· ····
[ॐ ह्रीं·······दीपं निर्वपामीति स्वाहा]

कालागुरु कपूर भरे,
दिव्यगंध महक रहे,
ऐसे धूप को मैं आहुति चढ़ाता हूँ।
तीर्थंकर पद···· ····
[ॐ ह्रीं·······धूपं निर्वपामीति स्वाहा]

केवला, अनार, आम,
नारियल औ बदाम
फलों की थाली ले गाता औ बजाता हूँ।
तीर्थंकर पद···· ····
[ॐ ह्रीं·······फलं निर्वपामीति स्वाहा]

जल चन्दन-अक्षत-पुष्प,
औ नैवेद्य दीप धूप,
फल से भरे अर्घ्य पात्र चरणों में बुलाता हूँ।
तीर्थंकर पद···· ····
[ॐ ह्रीं··· ····अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा]

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सोलह भावनाओं के अर्घ

जब भी उपवास करे सोलह-भावना को सुने।
मोक्षसुख दाता इन सोलह भावना को गुने ॥

पुष्पांञ्जलि

हिंसा झूठ, मिथ्या रहित, और आठ अंगसहित
सम्यक-दर्शन भावे सो पहली भावना है।
'दर्शन-विशुद्धि' यह पहली भावना है ॥ १ ॥
[ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धि के लिए अर्घ अर्पित करता हूँ]

मन से वचन से औ कर्म की शुद्धि से, दर्शन, ज्ञान, चारित्र औ तप का
आदर करे सो दूसरी भावना है।
'विनय-सम्पन्नता' यह दूसरो भावना है ॥ २ ॥
[ॐ ह्रीं विनयसम्पन्नता के लिए अर्घ अर्पित करता हूँ]

पंच व्रत सहित औ कुशीलों से रहित,
ऐसे जो हों भक्त वे पावें शील व्रत है।
क्रिया पच्चीस ऐसी तीसरी भावना है।
'निरतिचार शीलव्रत' तीसरी भावना है ॥ ३ ॥
[ॐ ह्रीं निरतिचार शीलव्रत के लिए अर्घ अर्पित करता हूँ]

सुकाल में पाठ-पूजा-ध्यान शास्त्रों का मनन, गुरु का नमन।
देना उपदेश यह चौथी भावना है।
'अभीक्ष्णज्ञानोपयोग' चौथी भावना है ॥ ४ ॥
[ॐ ह्रीं अभीक्ष्णज्ञानोपयोग के लिए अर्घ अर्पित करता हूँ]

चाहे जो कोई भी हो, पुत्र हो, मित्र या स्त्री हो,
सांसारिक विषयों से विरक्ति पंचम भावना है।
'संवेग' इसे कहते यह पंचम भावना है ॥ ५ ॥
[ॐ ह्रीं सांसारिक विषयों से विरक्ति के लिए अर्घ अर्पित करता हूँ]

उत्तम, मध्यम या जघन्य पात्र हो औषधि, शास्त्र हो अभय आहार हो।
शक्ति भर दान देना छठवीं भावना है।
'शक्ति-त्याग' इसे कहते यह छठवीं भावना है ॥ ६ ॥
[ॐ ह्रीं शक्तिपूर्वक त्याग के लिए अर्घ अर्पित करता हूँ]

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

मोक्ष की कामना हो, एवं शक्ति अनुकूल हो, भक्ति अपार हो।
द्वादश तपश्चरण करना सो सातवीं भावना है।
'शक्ति-तप' इसे कहते यह सातवीं भावना है ॥ ७ ॥
[ॐ ह्रीं शक्तिपूर्वक तप के लिए अर्घ अर्पित करता हूँ]

मरण उपसर्ग रोग, इष्ट का वियोग औ अनिष्ट का संयोग।
इनसे भय न खाना ही आठवीं भावना है।
'साधु-समाधि' इसे कहते यह आठवीं भावना है ॥ ८ ॥
[ॐ ह्रीं साधु-समाधि के लिए अर्घ अर्पित करता हूँ]

रोगों में पीड़ित हो—या वृद्ध हो मुनीश्वर।
सेवा करना, आहार देना, नवमीं भावना है।
'वैयावृत्त' करण रूप नवमी भावना है ॥ ९ ॥
[ॐ ह्रीं वैयावृत्तकरण रूप के लिए अर्घ अर्पित करता हूँ]

मन, वचन काय से अर्हन्तों को करना स्मर्ण।
भक्ति अरहन्तों की दसवीं भावना है।
'अर्हंद्-भक्ति' यह दसवीं भावना है ॥ १० ॥
[ॐ ह्रीं अर्हद्भक्ति के लिए अर्घ अर्पित करता हूँ]

मुनियों को आहार द्वारा-पेक्षण औ वन्दना,
पूजा, प्रणाम, विनय-वृत्त अन्तराय हो तो प्रायश्चित्त।
ऐसी गुरु-भक्ति एकादश भावना है।
'आचार्य-भक्ति' ऐसी एकादश भावना है ॥ ११ ॥
[ॐ ह्रीं आचार्यभक्ति के लिए अर्घ अर्पित करता हूँ]

जिनवाणी का व्याख्यान तत्त्वों लोकालोकों का आख्यान,
ऐसी श्रुत भक्ति करना द्वादश भावना है।
'बहुश्रुत-भक्ति' यह द्वादश भावना है ॥ १२ ॥
[ॐ ह्रीं बहुश्रुत भक्ति के लिए अर्घ अर्पित करता हूँ]

द्रव्यास्तिकाय तत्त्वों का, पदार्थों, कर्मों, प्रकृतियों का।
आगम का पठन-पाठन तेरहवीं भावना है।
'प्रवचन-भक्ति' कहते यह तेरहवीं भावना है ॥ १३ ॥
[ॐ ह्रीं प्रवचनभक्ति के लिए अर्घ अर्पित करता हूँ]

प्रतिक्रमण औ कायोत्सर्ग, समता औ वन्दना स्तुति औ स्वाध्याय।
ये आवश्यक जहाँ वह चौदहवीं भावना है।
'आवश्यक-परिहाणी' यह चौदहवीं भावना है ॥ १४ ॥
[ॐ ह्रीं आवश्यक-परिहाणी के लिए अर्घ अर्पित करता हूँ]

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अभिषेक जिनदेव का, व्याख्यान श्रुत का, गीत, वाद्य, नृत्य साथ।
पूजा जहाँ होवे वह पन्द्रहवीं भावना है।
'सन्मार्ग प्रभावना' यह पन्द्रहवीं भावना है ॥ १५ ॥
[ॐ ह्रीं सन्मार्ग प्रभावना के लिए अर्घ अर्पित करता हूँ]

चारित्र गुणकारी शीलवान मुनियों का
आदर जहाँ होवे वह सोलहवीं भावना है।
'प्रवचन वात्सल्य' यह सोलहवीं भावना है ॥ १६ ॥
[ॐ ह्रीं प्रवचन वात्सल्य के लिए अर्घ अर्पित करता हूँ]

आरती

भव-भवहिं निवारण सोलह कारण पढ़ते गुण के सागर को।
प्रणमामि तीर्थंकर असुख-नाशकर केवलज्ञान-दिवाकर को ॥

दृढ़ धरहु धरम दर्शन-विशुद्ध मन, वचन, काय त्रिकरण-विशुद्ध,
मत छोड़ो विनय चऊ-प्रकार जो मुक्ति-वरांगण हियहिहार।
निशदिन परिपालो शीलभेद, जो मुक्ति हरे संसार हेत,
ज्ञानोपयोग दिन-रात गुने, तसुकीर्ति भुवनमें सदा भ्रमे ॥

संवेग त्याग जे अणुसर ते संसार चक्र से वे तरते,
जे चउविधि दान सुपात्र देत, ते भोगभूमि सुख साथ लेत।
जे तप तपते बारह प्रकार, पावे सुख स्वर्गिक दस प्रकार।
जे साधु समाधि करें धारण, उनको न काल करता मारण ॥

जो जाने वैयावृत्तकरन, वे सब दोषों को करे हरण।
जो चिते मन अरहंत देव, तसु विषयहंत में कौन देर ?
प्रवचन समान जे गुरु नमंत, चउगति संसार नहीं भ्रमंत।
श्री उपाध्याय को जो नमंत अपने रत्नत्रय ते धरंत ॥

जे छः आवश्यक मन देते सो सिद्धपंच-गति को लेतें।
जे मार्ग प्रभावन हैं करते, वे पद अहमिन्द्र सभी गहते ॥
जे प्रवचन कार्य समर्थ भले, तिन कर्म जिनेन्द्र समान जले।
वात्सल्य भाव जे जन रखते ते तीर्थंकर पद को लहते ॥

जे सोलह कारण कर्म विदारण, जे नर हैं व्रत-शील-धरा,
ते देव अमर पद, पृथ्वि नरेश्वर सिद्धि लक्ष्मी को हृदय वरा।
[ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धि सोलहकारणेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा]

●

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

परिशिष्ट

सचित्र जैन रामायण

१.	पुस्तक का नाम	: राम-यशो-रसायन (सचित्र जैन रामायण)
२.	लेखक	: जैनाचार्य मुनि केश राज
३.	पुस्तक का साईज	: डिमाई / ४, आर्ट पेपर, ११८ पृष्ठ, क्लोथ बाईंडिग, प्लास्टिक कोटेड डस्ट कवर
४.	प्राक्कथन लेखक	: भारत कला भवन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के पूर्व निदेशक डॉ० राय आनन्द कृष्ण हैं। उनके अनुसार इसके चित्र १८/१९ की शताब्दी के हैं और सभी चित्र पश्चिमी राजस्थानी चित्र कला की अनुपम कृतियाँ हैं।
५.	भूमिका	: प्रसिद्ध चित्रकार मौ० फिदा हुसैन।
६.	चित्रों की सं०	: २१३, सभी रंगीन चित्र हैं।
७.	इस ग्रंथ के सम्पादक	: डॉ० ज्योति प्रसाद जी जैन, लखनऊ
८.	पुस्तक का समर्पण	: प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् डॉ० हरमन जैकोबी की पुनीत स्मृति को यह पुस्तक समर्पित की गयी है। डॉ० जैकोबी ने हमारी संस्था श्री जैन सिद्धांत भवन के जैन चित्रों की पहली प्रदर्शनी का तथा भवन के संस्थापक राजर्षि देवकुमार जी के चित्र का बनारस में उद्घाटन किया था।
९.	पुस्तक की कीमत	: १४५०) (साढ़े चौदह सौ रुपये)
१०.	प्रकाशक	: श्री देव कुमार जैन प्राच्य ग्रन्थागार, देवाश्रम, महादेवा रोड, आरा (बिहार) ८०२३०१

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

राम-यशो रसायनदास सचित्र रामायण : संक्षिप्त परिचय

श्री देवकुमार जैन प्राच्य शोध संस्थान, आरा (बिहार) के जैन सिद्धान्त भवन संग्रह में रामायण की एक दुर्लभ सचित्र प्रति है। लिपि और चित्रों की शैली को देखते हुए इसे १८वीं शती के अन्त में अथवा उससे भी अधिक प्रामाणिक आधार पर १९वीं शती के अन्तर्गत रखा जा सकता है। अनेक दृष्टियों से यह प्रति अलभ्य है। इसके प्रस्तोता की उदारवृत्ति और कला साहित्य का प्रतिपालन इसके प्रत्येक चित्रित पृष्ठ से स्पष्ट प्रदर्शित होता है। सबसे महत्त्वपूर्ण तो यह है कि नितांत समर्पण की भावना से न तो इसके प्रतिपालक ने अपना नाम दिया है, न लेखक ने, न चित्रकार ने। इन दृष्टियों से यह ग्रन्थ हमारी खोज का विषय बन जाता है।

ग्रन्थ का वर्णन "श्री जैन सिद्धांत भास्कर" नाम सुप्रसिद्ध शोध पत्रिका के जुलाई १९८६ (भाग ३९, सं० १) में डॉ० ऋषभचन्द्र "फौजदार" जैनदर्शनाचार्य ने प्रकाशित किया है। जैन साहित्य में रामचरित बहुत लोकप्रिय रहा है। वहाँ वे "पद्म" के नाम से आते हैं अतः बहुत कुछ मूल रूप में वही रामकथा, यत्किंचित् परिवर्तनों के साथ भिन्न-भिन्न लेखकों द्वारा "पद्मपुराण" या "पद्मचरित" यथा प्राकृत "पउमचरियं" के रूप में मिलती हैं। "हेमचंद्राचार्य" के त्रिष्ठिशलाकापुरुषचरित के सप्तम पर्व में भी यह कथा आती है। "पद्मपुराण" के कुछ हिन्दी संस्करण भी हैं जो "पद्मपुराण" भाषा के नाम से मिलता है। राम-यशो-रसायन-रास की हस्तलिखित प्रति में पत्र संख्या २२४ है जिसमें ९२ पन्ने अनुपलब्ध हैं। लेखक ने इसे प्रारम्भ में "रामायण" कहा है। प्रति में २१३ आकर्षक रंगीन चित्र हैं।

जैन आश्रयदाताओं ने ग्रन्थ लेखन, चित्रण को सतत् प्रोत्साहित किया, परन्तु इस प्रकार लिपिकारों और चित्रकारों का एक वर्ग ही विकसित हो गया जो सभी प्रकार के ग्रन्थों को निरन्तर तैयार करता रहता था। एक प्रकार की नागरी लिपि बन गई थी जिसे हम जैन नागरी कह सकते हैं। यहाँ हमारा ध्यान सहसा जैन चित्रकारों के एक बहुत बड़े वर्ग की ओर जाता है जो विशेष रूप से पश्चिमी राजस्थान के मारवाड़ प्रदेश—जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर थे। इनके कुछ स्थायी रूप से गाँव-नगरों में रहते थे, बल्कि उनके गाँव या मुहल्ले होते थे। वे गृहस्थ साधु के समान थे और उनका काम ग्रन्थ-चित्र तैयार करना था। उनकी शैली से विकसित हुई थी। पर उसमें उनकी एक निश्चित परम्परा भी थी, अर्थात् उन्होंने मूल पश्चिमी राजस्थानी शैली से विकसित हुई थी। पर उसमें उनकी एक निश्चित परम्परा भी थी, अर्थात् उन्होंने मूल पश्चिमी राजस्थानी चित्रकला को और सघन बनाया एवं उसे सांकेतिक रूप दिये। आज भी उनके द्वारा सचित्र पत्रों की संख्या सहस्त्रों में ज्ञात होती है। इसके अतिरिक्त कितने पन्ने अज्ञात अवस्था में पड़े हैं अथवा नष्ट हो गये इसकी कल्पना ही नहीं की जा सकती।

प्रस्तुत ग्रंथ चित्र कला प्रधान है। अतएव दृश्यों की निरन्तरता मिलती हैं। परम्परानुसार लेख्यअंश में यत्र-तत्र स्थान छोड़ दिये गये हैं, जिन्हें तदनुसार चित्रों से अलंकृत किया गया है। ये स्थान छोटे-बड़े सभी प्रकार हैं। कहीं-कहीं एक पट्टी जैसी भी है जिसमें अत्यन्त

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

छोटे आकार में दृश्य हैं। यह एक पुरानी परम्परा थी जो कम से कम ५०० ई० से जैन चित्रित ग्रन्थों में दिखती है, फिर यह पर्याप्त रूप में मिलती है।

इस प्रकाशित ग्रन्थ का प्राक्कथन तथा कलापक्षी की समीक्षा भारती कलाभवन, वाराणसी, हिन्दू विश्वविद्यालय के पूर्व निदेशक डॉ० राय आनन्द कृष्ण द्वारा की गयी है। इस ग्रन्थ का सम्पादन सुप्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन, लखनऊ ने किया है। सुप्रसिद्ध चित्रकार मु० फ़िदा हुसैन ने रामभक्त हनुमान के चित्र के माध्यम से अपने भावविभोर उद्‌गार प्रगट किये हैं।

श्री जैन सिद्धान्त भवन, आरा में संगृहीत करीब ६००० दुर्लभ हस्तलिखित एवं ताड़-पत्री ग्रन्थों में से प्रमुख ग्रंथों के प्रकाशन की योजना के अन्तर्गत इस दुर्लभ एवं अमूल्य ग्रन्थ का प्रकाशन भारत सरकार के संस्कृति विभाग के सहयोग से सम्भव हो पाया है।

पुस्तक का साईज : डिमाई / ४, आर्ट पेपर, ११८ पृष्ठ, क्लाथ बाईंडिंग, प्लास्टिक कोटेड, डस्ट कवर। २१३ रंगीन चित्र।

प्रकाशक : श्री देव कुमार जैन प्राच्य ग्रन्थागार, देवाश्रम, महादेवा रोड, आरा (बिहार), ८०२३१।

●

राष्ट्रपति का निजी सचिव

राष्ट्रपति सचिवालय
राष्ट्रपति भवन
नई दिल्ली—११०००४

सं० पी ऐस के/सं/९.१

१ अप्रैल, १९९१

प्रिय महोदय,

राष्ट्रपति जी को सम्बोधित आपके दिनांक २७ मार्च, १९९१ के पत्र के साथ "जैन रामायण" की प्रति प्राप्त हुई। राष्ट्रपति जी ने इस ग्रंथ का अत्यन्त रुचि के साथ अवलोकन किया है और आपके प्रयत्न की सराहना की है।

आपके द्वारा भेजी गई प्रति राष्ट्रपति जी के निजी पुस्तकालय में रख दी गई है।

विनीत
अमरनाथ खन्ना

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सचित्र जैन रामायण का लोकार्पण

बाए से दाहिने—श्री शरद कुमार जैन-भूतपूर्व राज्य मंत्री बिहार, श्री रंजनी रंजन साहु, सांसद, नई दिल्ली, माननीय डॉ० शंकर दयाल शर्मा, श्री अजय कुमार जैन मंत्री श्री जैन सिद्धांत भवन एवं सुबोध कुमार जैन, मानद प्रबंध निदेशक।

दिल्ली—६ अप्रैल, १९९१। आज भारत के उपराष्ट्रपति श्री शंकरदयाल शर्मा ने श्री देवकुमार जैन प्राच्य ग्रन्थागार, आरा, बिहार द्वारा प्रकाशित सचित्र जैन रामायण का लोकार्पण अपराह्न ८ बजे दिन में उपराष्ट्रपति भवन में किया।

समारोह में संस्था के संरक्षक श्री सुबोध कुमार जैन, सचिव श्री अजय कुमार जैन के अतिरिक्त श्री रजनी रंजन साहू, एम० पी०, श्री शरद जैन, भूतपूर्व राज्यमन्त्री, बिहार सरकार एवं जैन समाज के गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे।

राजस्थानी शैली के २१३ नैनाभिराम चित्रों से सुसज्जित एवं १८वीं शती में हस्त-लिखित जैन रामायण की यह प्रति श्री जैन सिद्धान्त भवन, आरा, बिहार में संग्रहीत करीब ६,००० हस्तलिखित एवं ताड़पत्रीय ग्रन्थों के प्रकाशन की योजना की पहली कड़ी है। तथा विश्व में इसके टक्कर की कोई दूसरी प्रति उपलब्ध नहीं है। इस ग्रन्थ का सम्पादन प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० ज्योति प्रसाद जैन तथा कलापक्ष का विवेचन भारत कलाभवन, वाराणसी के पूर्व निदेशक डॉ० राय आनन्द कृष्ण ने किया है। भूमिका में प्रसिद्ध चित्रकार मो० फिदा हुसैन ने हनुमान के चित्र के माध्यम से अपने भाव व्यक्त किये।

उपराष्ट्रपति ने अपने उद्‌गार में इस प्रकाशन की प्रशंसा करते हुए इस बात का समर्थन किया कि श्री जैन सिद्धान्त भवन, आरा की एक शाखा देश की राजधानी दिल्ली में खोली जाय, जहाँ उसमें संग्रहीत/हस्तलिखित ग्रन्थ एवं कला दीर्घा देश-विदेश के पर्यटकों एवं विद्वानों के लिये सहज सुलभ हो। उन्होंने यह आशा भी दिलाई कि इस पुनीत कार्य के लिए दिल्ली विकास प्राधिकरण द्वारा भूमि तथा सरकार द्वारा अन्य सुविधायें अवश्य दिलाई जायेंगी।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सचित्र जैन रामायण पर लोकमत

इलेस्ट्रेटेड वीकली, २५ अप्रैल, १ मई १९९२

The Jain Ramayana

Not too many people are aware that there is such a thing as a Jain Ramayana. But the Jains, apparently, believe that Rama was one of the 63 "pre-eminently auspicious personages of proto-history". They regard him as the eighth Balabhadra, Lakshmana as the eighth Narayana and Ravana as the eighth Pratinarayana. The principal events—and their sequence—of the Jain Ramayana are virtually the same as that of the Valmiki Ramayana. But there are other significant differences, as you will see from the following extract. This is from a beautifully brought out book. The Illustrated Manuscript of Jaina Ramayana, edited by Dr. Jyoti Prasad Jain and published by the Jain Siddharth Bhawan, Devashram, Arrah, Bihar. The book contains plate after plate of the most exquisite colour illustrated manuscript of the Jaina Ramayana. There are as many as 72 pages of these, making for a total of well over 200 paintings.

Here is the extract I mentioned, which will tell you about the distinctiveness of the Jaina Ramayana :

(1) Rama is a direct descendant of the Tirthankara Rishabhadeva who was also known by the name of Ikshvaku and was the founder of the city and kingdom of Ayodhya of his eldest son Bharata, the first Chakravartin of Bharatakshetra and after whom this country came to be called Bharatavarsha: and of Bharata's son and successor Arkakirti the founder of the Solar race. (2) Rama and all the other principal characters, male and female, of the story are followers of Jainism. (3) Rama never indulged in the pastime of hunting birds or beasts, and never ate meat or drank wine. (4) Ravnaa and his people were not

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

inhuman demons but were highly civilized human beings of the Rakshasa clan of the Vidyadhara race, and so were Pavananjaya. Hanumana, Bali, Sugrive, Angada Nila, etc. who were not sub-human monkeys, but a clan of the Vidyadharas whose totem or insignia was a 'monkey'. These Vidyadharas were also followers of Jainism, and many of them, including Hanumana, his lieutenants Nila and Mahanila, and Ravana's son Meghanada, renounced worldly life, took to asceticism and attained salvation. (5) Ravana was killed in battle by Lakshmana, and not by Rama (6) Ravana's wife Mandodari was a pious lady, revered as a sati. (7) Sita, revered as one of the 16 Mahasatis of all times, was actually the daughter of Ravana by Mandodari, and came to be accidentally adopted and brought up by Janaka in Mithila. (8) The episode of Sita's Swayamvara is different from Valmiki's version, and is the one preferred by later Brahmanical writers even. (9) Rama and Lakshmana each married several maidens during the period of the their exile. (10) Lakshmana, when struck by Indrajita's Shakti at the battlefield, was cured by a princess named Vishalya whom he consequently married. (11) The meeting of Hanumana and Vibhishana and the former's winning over the latter as an ally of Rama (12) The episode of the Chandrahasa sword and the accidental klling by Lakshmana of Shambuka, the son of Ravana's sister Chandranakha, which event finally led to the Rama-Ravana war. (13) The reason of Sita's banishment by Rama, birth of her sons Lava and Kusha, her meeting with Rama, the fire ordeal, her renunciation, asceticism and, after death, her being born as a celestial being in the heavenly abode. (14) The war of Lava and Kusha with Rama and Lakshmana and the reunion. (15) The bright spots in the character of Ravana.

●

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कथालोक, अगस्त ९१

जैन रामायण

मुनि केशराज कृत सचित्र राम-यशो-रसायन-रास

ग्रन्थ हाथ में आता है, कुछ पलों के लिए दृष्टि उस पर थम जाती है। उसकी भव्यता तथा मोहकता पर दृष्टि जमी रहती है। कुछ पलों के बाद ग्रन्थ को उलटने-पलटने का मन करता है। एक-एक पृष्ठ, पृष्ठ के तीन-तीन भाग और हर भाग को देखने का अनूठा आकर्षण, तुरन्त न चाहते हुए भी एवं समय न होते हुए भी काफी लम्बा समय इस ग्रन्थ को देना पड़ता है। प्रथम दृष्टि में देखकर ग्रन्थ रखा नहीं जा सकता। मात्र इधर-उधर के पृष्ठ पलटने से मन संतुष्ट नहीं होता। प्रथम अवलोकन भी बहुत लम्बा हो जाता है और यही है समीक्ष्य ग्रन्थ की अलौकिक भव्यता, मोहकता, सुरम्यता की एक हल्की-सी झाँकी।

रामायण के सैकड़ों-सैकड़ों ग्रन्थ हैं। वाल्मीकि रामायण और तुलसी रामायण तो जन-जन में चर्चित है ही, अध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण, अद्‌भुत रामायण भी बहुत प्रसिद्ध हैं। तिब्बत, हिन्देशिया, जावा, श्याम, ब्रह्मदेश तथा सिंहल देशों में भी अपनी-अपनी भाषा और शैली में रामायण लिखी गई हैं। जैनों में भी विभिन्न रामचरित हैं। विमल सेन सूरि का 'पउमचरिय', रविसेन का 'पद्‌मचरित्र' तथा गुणभद्र का 'उत्तरपुराण' प्रसिद्ध और पुरानी रामायण कृतियाँ हैं।

समीक्ष्य रामायण की रचना मुनि केशवराज जी ने संवत् १६८३ में की। यह रामायण चार खण्डों में विभाजित है। स्थानकवासी तथा तेरापंथी सम्प्रदायों के साधु-साध्वियों में यह काफी प्रचलित रही है। बहुत से साधु-साध्वी तो प्रतिवर्ष अपने चातुर्मास काल में इसका नियमित वाचन-प्रवचन करते रहे हैं।

मुनि केशराजजी की इस रचना को चित्रमय रूप में प्रस्तुत किया गया है, १८वीं सदी के अन्त अथवा १९वीं शदी के प्रारम्भ में। वे चित्रकार, लिपिक और प्रतिपालक कितने धर्म परायण और प्रभु के प्रति समर्पित रहे होंगे कि इतना महान कार्य करने वालों ने अपने नामों का उल्लेख तक नहीं किया। इतने अद्‌भुत कलात्मक और बहुरंगी चित्र एक नहीं सैकड़ों, २१३ पन्नों में, हर पन्ने का ? और २ भाग, जो कि संभव है, आगे-पीछे रहे हों। (ग्रन्थ में इसका उल्लेख नहीं है) यानि ४२६ बहुरंगे चित्र और चित्रों पर पद्यों का लेखन करने वाले और करवाने वाले दोनों ही गहरी धर्मभावना से अनुप्राणित रहे होंगे, जिन्होंने न कला पर गर्व किया और न कला की साधना के लिए समर्पित की गई भारी भरकम राशि पर ही गर्व किया। शुद्ध धर्म-समर्पण रहा है उनका।

इस चित्रावली में से बीच-बीच के काफी पृष्ठ अनुपलब्ध हैं। प्रकाशक उनकी चित्रावली तो कहाँ से उपलब्ध करते, परन्तु १९१४ में सूरज जैन प्रिन्टिंग प्रेस से छापी गई इस रामायण की एक गुजराती आवृत्ति उनको उपलब्ध हो गई और विश्रुत विद्वान और साहित्यकार उपाध्याय

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अमर मुनि के सौजन्य और कृपा से उनसे तथा उनके निकटवर्ती शिष्य मुनि समदर्शीजी, साध्वी विभाजी, साधनाजी आदि ने विद्वानों का उचित सहकार लेकर तदनुरूप हिन्दी अनुवाद कर दिया। थोड़े अपूर्ण रहे ग्रन्थ को भी इस प्रकार परिशिष्ट जोड़कर पूर्ण बना दिया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ की चित्र शैली मारवाड़ी है। इस पर जोधपुर-बीकानेर का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित है। रामायण जिस प्रकार एक समग्र जीवन का ग्रन्थ है, उसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सभी पक्षों का समायोजन है, उसी प्रकार इन चित्रों में भी जीवन के समग्र रस प्रवाहित हुए हैं। जन्म, विवाह, युद्ध और धर्मोपदेश के साथ सतरंगी प्रकृति, भव्य भवनों के दृश्य, अप्सराओं के नृत्य, दरबारियों का ठाट-बाट और मजदूर मेहनतकशों का श्रमिक जीवन सभी कुछ उजागर हुआ है। हाँ, एक बात थोड़ी खटकती है कि रामायणकालीन पात्रों तथा वातावरण के चित्रांकन में चित्रकार अपने वर्तमान को आरोपित करने से नहीं बच पाया है। जहाँ-जहाँ मुनि-जीवन का उल्लेख आया है, वहाँ चित्रकार ने मुँहपति वाले मुनियों को ही चित्रित किया है। हालाँकि स्वयं ग्रन्थ रचयिता मानते होंगे कि श्री राम के काल में मुँह पर मुखवस्त्रिका लगाने की परम्परा प्रारम्भ नहीं हुई थी। कलाकार पर भी जब वर्तमान-परिवेश और साम्प्रदायिक दृष्टि हावी हो जाती है तो लगता है उसकी शाश्वत दृष्टि थोड़ी मन्द हो जाती है।

ग्रन्थ के प्रकाशक बहुत-बहुत धन्यवाद के पात्र हैं कि उन्होंने इतना भारी भरकम श्रम साध्य और व्यय साध्य कार्य सम्पन्न किया है। उन्होंने अपने ग्रन्थालय में सुरक्षित भव्य चित्रावली को भारत सरकार के संस्कृति विभाग के सौजन्य से बहुत ही भव्यता के साथ पाठकों तक पहुँचाया है कि अपनी समृद्धि बहुत से संग्रहालयों तक पहुँचाकर उनको भी समृद्ध किया है।

हालाँकि पहली नजर में इस समीक्ष्य ग्रन्थ का ८५० रुपया मूल्य बहुत अधिक लगता है, परन्तु इतने कलात्मक रंगीन चित्रों वाला भव्य प्रकाशन प्राप्त कर कलारसिक संग्राहक को धन्यता ही अनुभव होती है।

●

श्री नीरज जैन, शान्ति सदन, सतना, २९ अक्टूबर १९९१

"जैन रामायण" की सुन्दर प्रति पाकर बहुत-बहुत प्रसन्नता हुई। संयोजन मनोहर, आकर्षक और जैन चित्रकला का सच्चा-सही प्रस्तुतीकरण है, ऐसा प्रभाव मेरे मन पर पड़ा है। वास्तव में समीक्षाओं के माध्यम से जैसा जितना परिचय पाया था, प्रकाशन उससे कहीं अधिक सुन्दर और सम्पूर्ण है। देखे बिना उसके महत्व को तथा उसके पीछे निहित परिश्रम को समझना सम्भव ही नहीं है। इसके लिये मेरी ओर से आपको तथा संस्था के संचालक बन्धुओं को बार-बार हार्दिक बधाई।

●

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अमर भारती, जुलाई १९९१

भारतीय-संस्कृति के इतिहास में श्री राम, वे इतिहास पुरुष हैं, जिनकी यशो-गाथा वैष्णव, जैन, बौद्ध आदि प्रायः सभी धर्म-परम्पराओं में भक्तिपूर्वक गाई जाती रही है। जैन-परम्परा में रामचरित्र से सम्बद्ध ग्रन्थों की प्रचुर संख्या है। श्री विमलसूरी के पउमचरियं नामक प्राकृत महाकाव्य से लेकर पद्म-पुराण आदि अनेक प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, गुजराती, राजस्थानी आदि विभिन्न भाषाओं के अनेक ग्रन्थ समय-समय पर रचे गए हैं। वि. सं. १६८३ में विजय गच्छीय सुप्रसिद्ध कवि मुनि केशराजजी के द्वारा राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा में रामयशो रसायन नाम से हिन्दी पद्य रामायण की रचना की गई।

मुनिश्री केशराजजी की जैन रामायण कथा को सर्वप्रथम हिन्दी में अवतारणा करने के कारण हम जैन-परम्परा का सन्त तुलसीदास कह सकते हैं। यह रचना इतनी अधिक लोकप्रिय रही है कि स्थानकवासी तथा तेरापन्थ आदि परम्पराओं में तो विशेष समादर के रूप में कथा-वाचकों के द्वारा प्रयुक्त होती रही है।

प्रस्तुत रामायण में प्रथम विभिन्न रागों में दोहे होते हैं, फिर उसी प्रकार अनेक राग-रागणियों में चरित्र वर्णन रूप ढालें होती हैं। ढालों की संख्या ६२ है।

रामायण की प्रस्तुत प्रतिलिपि जैन सिद्धान्त भवन, आरा के संग्रहालय में श्री देवकुमार-जी जैन के द्वारा संग्रहित की गई थी। यह हस्तलिखित प्रति काफी प्राचीन है एवं २१३ अद्भुत रंगीन कलात्मक हस्त चित्रों द्वारा सुसज्जित भी है। इस तरह की चित्र युक्त प्रति अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं हुई। हमें अति हर्ष है कि जैन सिद्धान्त भवन, आरा के संरक्षक श्री सुबोधकुमार जैन ने अति साहस का परिचय दिया है, हस्तलिखित प्रति के अनुरूप ही रंगीन चित्रों सहित प्रकाशित कर साहित्य जगत् को एक अपूर्व प्रकाशन से परिचित कराया है।

उक्त प्रकाशन का लोकार्पण दिल्ली में जब उपराष्ट्रपति श्री शंकरदयाल शर्मा के द्वारा किया गया, तो वे इतने अधिक भावविभोर एवं विमुग्ध हो गए कि प्रकाशन की महत्ता के लिए सहसा मुखर हो उठे। उपस्थित जाने-माने अनेक विद्वान् भी प्रस्तुत कलात्मक मूल रचना तथैव मूल चित्र एवं मुद्रण को देखकर प्रशंसा की शब्द धारा में प्रवहमान हो गए।

आज के युग की आकाश छूती महँगाई में इस तरह के सर्वाधिक धन देय साध्य प्रकाशन करना सहज नहीं है। ये श्री सुबोध कुमारजी का ही साहस है। इसके लिए कोई भी सहृदय दर्शक एवं पाठक मुक्त कंठ से प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता।

प्रस्तुत मुद्रण के सम्बन्ध में जितना भी महत्ता की दृष्टि से लिखा जाए, कम ही है। अतः समृद्ध घराणों के व्यक्तिगत संग्रहालयों, विश्वविद्यालय, शोध संस्थानों एवं साहित्य के प्रति अभिरुचि रखने वाले व्यक्तिगत संग्रहों में प्रस्तुत प्रकाशन का संग्रह रखना अत्यावश्यक है।

जैन सिद्धान्त भवन, आरा में अन्य भी अनेक सचित्र कलात्मक ग्रन्थ संग्रहीत हैं। हम आशा करते हैं, प्रस्तुत रामायण के व्यापक रूप से अपनाने पर वे ग्रन्थ भी यथाप्रसंग शीघ्र ही प्रकाशन पा सकेंगे। फलतः जैन-साहित्य ही नहीं, भारतीय साहित्य भी गरिमा-महिमा मण्डित हो सकेगा।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

तीर्थंकर मासिक, इन्दौर, जून १९९१

इस प्रकाशन से हम गौरवान्वित हुए हैं

स्थानकवासी मुनि केशराज प्रणीत 'सचित्र रास-यशो-रसायन-रास' श्री देवकुमार जैन ओरिएंटल लायब्रेरी का एक प्रतिष्ठा-प्रकाशन है, जिसकी चित्र-रूप भूमिका अंकित की है सुप्रसिद्ध चित्रकार एम० एफ० हुसैन ने, सम्पादकीय (अंग्रेजी) लिखा है इतिहासवेत्ता स्व० डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन ने, प्राक्कथनकार हैं भारतीय कला भवन (काशी विश्वविद्यालय, वाराणसी) के डॉ० राय आनन्द कृष्ण, एवं 'प्रकाशकीय' के लेखक हैं ओरिएंटल लायब्रेरी के मानद मन्त्री श्री अजयकुमार जैन। यह अप्रतिम कृति प्राच्यविद्या के विशेषज्ञ डॉ० हर्मन जेकोबी को समर्पित है।

ग्रन्थ के नाभिक बिन्दु राम हैं। राम भारतीय संस्कृति की समग्रता (होलनेस) के जीवन्त प्रतीक हैं। वे किसी एक की बपौती नहीं हैं। श्रमण और वैदिक दोनों ही परम्पराओं ने राम के महान् व्यक्तित्व को अपनी-अपनी आँख से अपनी-अपनी भंगिमा में देखा, स्फूर्त, प्राप्त और चित्रित किया है। राम भारतीय लोक-जीवन के आदर्श और उसकी सर्वोच्च प्रेरणा हैं (रहे हैं)। जैन वाङ्मय में राम के लिए 'पद्म' शब्द प्रयुक्त हुआ है। 'पद्मचरित' (आचार्य रविषेण, ६४३-६८३ ई०) 'पउमचरिय' (विमलसूरि, ६४४-७७८ ई०) और 'पउम चरिउ' (स्वयम्भू, ६७७-६८३ ई०) आदि रामायण ही हैं। समीक्ष्य कृत के रचयिता श्री केशराज ऋषि हैं। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध अथवा उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में रचित 'केशोराय-रामायण' के प्रतिपालक (प्रायोजक), लिपिक और चित्रकार अज्ञात हैं। प्रस्तुत कृति में २१३ रंगीन चित्र हैं। चित्रों के रंग गहरे / चटखीले हैं, तीखे नहीं हैं। दृश्य-कल्पनाएँ नयनाभिराम हैं और राजस्थानी लोक-जीवन के मिथकों को अपनी गोद में समेटे हुए हैं। भाषा जैन प्रभाव वाली मध्यकालीन व्रज है।

जैन जीवन-शैली निवृत्ति-मूलक होते हुए भी प्रवृत्तिमूलक जीवन की दुश्मन नहीं है। यही कारण है कि जैन मुनियों ने जैन कामशास्त्र को भी अपनी अनासक्त मानसिकता की परिधि में सांकुश रक्खा है।

●

श्री डॉ० रंजन सूरिदेव, पी० एन० सिन्हा कॉलोनी, भिखना पहाड़ी, पटना

जैन रामायण विषय और कलावरेण्य मुद्रण की दृष्टि से श्री जैन सिद्धान्त भवन की महार्घ सारस्वत उपलब्धि है। यह ऐतिहासिक एवं कोशशिलात्मक कार्य प्रबन्धकीय प्रयत्न-तत्परता का अविस्मरणीय अध्याय होगा।

●

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

श्रमण मासिक, वाराणसी, जनवरी–१९९१

रामकथा का, न केवल हिन्दू परम्परा में अपितु बौद्ध और जैन परम्परा में भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। विमलसूरि का पउमचरियं प्राकृत भाषा में रचित रामकथा का आदि काव्य माना जाता है। इसी प्रकार रविषेण का पद्मचरित संस्कृत भाषा का जैन रामकथा विषयक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। अपभ्रंश के महाकवि स्वयम्भू द्वारा रचित पउमचरिउ भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। जैनाचार्यों ने अपने-अपने युग की भाषाओं में रामकथा पर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।

प्रस्तुत कृति भी उसी क्रम में प्राचीन मरु-गुर्जर में रचित एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिसके लेखक विजयगच्छ के मुनि केशराज हैं। रचनाकाल वि० सं० १६८३ (ई० सन् १६२६) है। इस रामकथा का स्थानकवासी और तेरापंथी सम्प्रदाय में विशेष प्रचलन रहा है। इसके कुछ संस्करण भी प्रकाशित हुए हैं किन्तु प्रस्तुत संस्करण का अपना वैशिष्ट्य है।

प्रस्तुत कृति का सबसे महत्त्वपूर्ण वैशिष्ट्य तो यह है कि यह एक सचित्र प्रति है। इसके चित्र अत्यन्त ही आकर्षक और जीवन्त हैं, तथा उन्नीसवीं शताब्दी की जयपुर एवं मारवाड़ शैली के अनुपम नमूने हैं। प्रो० आनन्द कृष्ण ने इसे मथेन शैली के निकट बताया है। वस्तुतः जैन यतियों का एक वर्ग विशेष जो सचित्र जैन ग्रन्थों की प्रतिलिपि एवं चित्र निर्माण से जुड़ा हुआ था, उनकी शैली ही मथेन शैली कहलाती है।

प्रस्तुत कृति के चित्रों में अनेक स्थलों पर जैन मुनियों का चित्रण भी हुआ है। मुनियों और साध्वियों की वेषभूषा स्थानकवासी परम्परा के अनुरूप चित्रित की गई है। साधु-साध्वियों के मुख पर मुखवस्त्रिका और लम्बी डण्डी युक्त रजोहरण इसके वैशिष्ट्य हैं। चित्र शैली से यह स्थानकवासी परम्परा का ग्रन्थ प्रतीत होता है किन्तु इसमें तीन-चार स्थलों पर जिनमन्दिर और जिनबिम्ब का अंकन भी है। रामकथा के साथ-साथ अन्तर्कथा के रूप में जैन परम्परा की अनेक कथाएँ भी सम्मिलित हैं और उनका भी सजीव अंकन यहाँ देखा जाता है। चित्र इतने चटकीले और स्पष्ट हैं कि देखते ही बनते हैं। मूल कृति के चित्रों को यथावत् उन्हीं रंगों में इस कृति में प्रस्तुत किया गया है। इस महत्त्वपूर्ण एवं व्यय साध्य कार्य के लिए देवकुमार प्राच्य शोध संस्थान निश्चय ही बधाई का पात्र है। इस शोध संस्थान द्वारा स्वपरम्परा से भिन्न सम्प्रदाय के ग्रन्थ का प्रकाशन इसकी उदार दृष्टि का परिचायक है। प्रत्येक जैन संस्था और कलाप्रेमी जनों को इसका संग्रह अवश्य ही करना चाहिये। दुर्भाग्य से यह ग्रन्थ खण्डित रूप में ही प्राप्त हुआ है। प्रकाशकों ने इन लुप्त पृष्ठों के मूल पाठ का संकलन भी परिशिष्ट के रूप में कर दिया है जो उसकी श्रमनिष्ठा एवं सूझ-बूझ का परिचायक है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

नवभारत टाइम्स, २० जुलाई १९९१

रामआख्यान की इंद्रधनुषी अभिव्यक्ति

मर्यादा पुरुषोत्तम राम का आख्यान पूरे भारतीय समाज के लोकमानस का आदर्श आख्यान है। राम कथा को लेकर जैन साहित्य में न केवल अनेक ग्रन्थों की रचना हुई है, बल्कि अनेक ग्रन्थों में राम के आदर्श चरित्र का आंशिकरूप से उल्लेख भी हुआ है।

जैन तीर्थंकरों की जीवनी से सम्बन्धित 'त्रिषष्ठिशलाका पुरुषचरित' के सप्तम पर्व में यह कथा आती है। इसमें राम और रावण को अनेक पूर्वजन्मों से एक-दूसरे के शत्रु के रूप में वर्णित किया गया है। रामकथा के मूलस्रोत वाल्मीकि रामायण की रचना के एक शताब्दी के भीतर ही जैन आचार्य विमलसेन सूरि ने रामआख्यान को लेकर 'पउमचरिउ' (पद्म चरित्र) की रचना की थी। इसका रचनाकाल महावीर निर्वाण वर्ष के समय का है। यह समय ईसा निधन का तीसरा वर्ष ठहरता है। इसके अनुसार राम का जन्म ही रावण वध के लिए होता है।

विमलसेन सूरि के बाद रविषेण, हेमचंद्र, सोमसेन आदि जैन आचार्यों ने रामकथा सम्बन्धी अपनी रचनाओं में राम के चरित्र में मर्यादा और निष्ठापूर्ण शील-सौजन्य पर विशेष बल दिया है। उनका संदेश कहता है कि राम भी सिद्ध जिनों की भाँति अलौकिक पुरुष हैं, लेकिन मनुष्य योनि में जन्म लेने के कारण वे लौकिक मर्यादाओं का पालन करते हैं। १९वीं शताब्दी तक जैन साहित्य में राम के इसी व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा होती रही है।

रामआख्यान को लेकर जैन साहित्य में लगभग २५० ग्रन्थ व रचनाएँ मिलती हैं। इनमें से २५ प्राकृत, ७१ संस्कृत, २२ अपभ्रंश, ८२ हिन्दी, १७ कन्नड़, दो तमिल, चार गुजराती, तीन मराठी और दो उर्दू में हैं। जैन ग्रन्थों में राम के चरित्र में अलौकिकता के संकेत बराबर दिये गये हैं। इनमें से अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

जैन साहित्याचार्यों ने रामआख्यान का यशोगान तो किया ही, कुछ सृजनकर्त्ताओं ने रंग-संयोजन द्वारा भी अपने भाव और विचारों को अभिव्यक्ति दी। मुनि केशराज कृत सचित्र राम-यशो-रसायन-रास-जैन रामायण में मुद्रित चित्र (राम-लक्ष्मण-सीता के समक्ष असुर, कोल्हू में पिसते लोग आदि) रामचरित को नूतन और अभिनव अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं।

राम यशो-रसायन-रास के संपादकीय में डा० ज्योति प्रसाद जैन ने यह बेबाक टिप्पणी की है कि इस पुस्तक का वैशिष्ट्य छंदों की भाषा, कथ्य या शैली में अंतर्निहित नहीं है, वरन् चित्रों में है। ये चित्र जैन चित्रकारों के एक बहुत बड़े वर्ग की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। ये चित्रकार विशेष रूप से पश्चिमी राजस्थान के मारवाड़ क्षेत्र—जैसलमेर, बीकानेर और जोधपुर में थे। उनका कार्य ग्रन्थ चित्र तैयार करना था और उनकी शैली मूलतः पश्चिमी राजस्थानी शैली से विकसित हुई थी। उन्होंने मूल पश्चिमी राजस्थानी चित्रकला को और सघन बनाया तथा उसे सांकेतिक रूप प्रदान किया।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इस ग्रन्थ में प्रस्तुत चित्रों के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि हम उस कलाकार के नाम-गाम से अपरिचित हैं। अवश्य ही चित्रकार ने इनकी रचना समर्पण और लोक कल्याण की भावना से प्रेरित होकर की होगी। इस कारण उसने स्वयं को अज्ञेय रखा। इन चित्रों का रचना काल १९वीं शताब्दी के आसपास का प्रतीत होता है। कारण, ये १९वीं शती के अन्त की वास्तुकला से मेल खाते हैं।

इस ग्रन्थ के चित्रों का अध्ययन तभी सार्थक व उपयोगी हो सकेगा, जब इसके सभी अथवा अधिसंख्य उदाहरण प्राप्त हों और उनका सूक्ष्म विवेचन किया जाए। निस्संदेह चित्र मार्मिक हैं।

आरा के श्री **देवकुमार जैन प्राच्य शोध संस्थान** सराहना का पात्र है, जो दुर्लभ और अमूल्य ग्रन्थों का संरक्षण करके आने वाली पीढ़ियों के लिए ज्ञान-निधि को सुरक्षित रखने का काम कर रहा है। ग्रन्थ का प्रकाशन भी संस्थान के सचिव श्री **अजय कुमार जैन** द्वारा किया गया है। संपादन **डॉ० ज्योति प्रसाद जैन** ने किया है और प्रस्तावना किसी अन्य ने नहीं, महान चित्रकार एम० एफ० हुसैन की है।

●

श्री प्रताप सिंह वैद, पूर्व अध्यक्ष, भारत जैन महामंडल, सिलीगुड़ी–७३४४०१

जैन रामायण देखकर गद्‌गद् हो गया। आपने जैन जगत में एक बड़ा काम किया है।

●

डॉ० राय आनन्द कृष्ण, भारत कला भवन, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय

यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि सचित्र जैन रामायण का लोकार्पण समारोह महामहिम डॉ० शंकर दयाल जी शर्मा द्वारा सम्पन्न हुआ। बधाई। यह एक महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ।

●

डॉ० नेमीचन्द जैन, ६५–**पत्रकार कालोनी कनोड़िया मार्ग, इन्दौर**–४५२००१

पत्र के साथ "जैन रामायण" की एक प्रति भी है। हार्दिक बधाई—इतने सुसमृद्ध/सुरुचिपूर्ण, अलभ्य/अविस्मरणीय प्रकाशन के लिये।

●

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

आचार्य तुलसी जैन विश्व भारती, लाडनू २३ अक्टूबर १९९२

हमारे धर्म संघ तेरापंथ में इस रामायण का वाचन शताब्दियों से चल रहा है। प्राकृत, अपभ्रंश और संस्कृत के रामायण जनसाधारण के लिए सुबोध नहीं हैं। यह राजस्थानी में लिखा हुआ एक सुन्दर गेय काव्य है। इसमें सरलता, सरसता के साथ-साथ व्यात्मकता भी है। सीता के वनवास के समय कवि ने जो वियोग-विरह का वर्णन किया है वह बहुत मार्मिक है--

लोगानी सुणि बात नाथजी तुम्ह हूँ छोड़ी, बालपगानी प्रीतितणा जिम ताणी तोड़ी। मिथ्यातीनो दृष्टि की बात सुणी विपरीति, छोड़ोपति जिन धर्म ने दो राखे जो कुलरीति।

अेम सुणि मूर्छा थाय पड्यो रघुनाथ तिवारे, लक्ष्मण करी उपचार घणा मूर्छा ही निवारे।

उठाई ऊँचो कियो वेदन तो असमान, किहां गई सीता सती हो प्यारी प्राण समान बहिरी बिकथावाद पुरुषपद देखण आंधी, गूंगी कहण कुबोल कहीपिण नवि लीये सांधी परघर फिरवाया गुली-लूली परधन लेण ऐह गुर्णानी धरणी कहियो में कहो केणसु। मतोदयणमंत्रीस सुकाम समारण दासी, प्रीतिवती पियु साथ महासुख भोग विलासी पुण्यवती प्रगति खरी रूमावती संसार, हुई नहीं होसे नहीं हो सीता सरिखो नार।

रागों का चयन भी सुन्दर है।

जैन सिद्धान्त भवन, आरा ने सचित्र जैन रामायण प्रकाशित कर ग्रन्थ को सुलभ बना दिया है। सचित्र होने के कारण आकर्षक भी बन पाया है। अत्यधिक उपयोगी हो सकेगा।

●

William Clark, Jr., Ambassador of The United States of America.

I have now personally reviewed the Jain Ramayan. It is a beautiful book.

●

Rajendra Kumar Jain, 94-Arcadia, Nariman Point, Bombay.

I am indeed grateful to you for the wonderful book titled "Jain Ramayan". It is an immortal publication and would ever be remembered. My heartiest congratulations to you and to your family for having accomplished such an excellent task.

●

Ac. Gunratnasuri MS

Jin Gun Aradhak Trust

Sri. G. C. Jain, (Electrical Consultant, Birla Group), 15–D. Block-F, Saket New Delhi–110017

I was very glad to receive the Jain Ramayan. It is beautiful and I must congratulate you for bringing it out. The originals are very valuable and I would suggest that the same may be suitably protected.

●

राजेश जैन धन्नू, व्यवस्थापक, वीर जैन पाठशाला, देवघर, जि०–दुर्ग

जैन रामायण (रामयशोरसायन रास) नामक अद्वितीय ग्रन्थ के प्रकाशन पर हार्दिक बधाई। ऐसी पुस्तकों का अधिकाधिक प्रसार हो ताकि उसका सदुपयोग हो सके।

●

Ac. Gunratnasuri MS

Jin Gun Aradhak Trust

THE JAINA ANTIQUARY

VOL 46 December 1993 No. 1–2

❀

"श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादा मोघलाञ्छनम् ।
जीयात् त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥"

Editorial Board

Dr. Kastur Chand Kashliwal Dr. Rajaram Jain
Dr. Aditya Prachandiya, Dr. Shashi Kant
Dr. Rishabha Chandra Fouzdar Jugul Kishore Jain

Published by

Ajay Kumar Jain, Secretary

Shri Devkumar Jain Oriental Research Institute

SHRI JAIN SIDDHANT BHAWAN

ARRAH BIHAR (INDIA)

❀

ANNUAL SUBSCRIPTION

Inland Rs. 50/–] [Foreign Rs. 75/–

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

Contents

1 Aspects of Jaina Architecture and Art in Southern and western India
—Dr. K. V. Soundara Rajvn — 1—9

2 Hūṇa Capture of Citrakūta
—Dr. S. V. Sohoni — I0—15

3 Bâlachandra Sūri And His works
—Dr. Keshaw Prasad Gupta — 16—23

4 Sahu Shreyans Prasad Ji, as Knew hi n
—Subodh Kumar Jain — 24—25

5 Jaina Society through the Ages
—Dr. Vilas Sangave — 26—27

6 Prakrit Dictionary Project undertaken by B.O.R.I.
—Mrs. Nalini P. Joshi — 28—29

7 Jain Vishwa Bharati Institute — 30—32

8 The Greatness Gomateshvara
—Dr. Jagdish Chandra Jian — 33—38

9 Late Pandit SumerChand 'Diwakar' A Tribute
—Subodh Kumar Jain — 39

10 Padam Bhusan Late Akshay Kumar Ji Jain A Tribute — 40—41
—Subodh Kumar Jain

11 Book—Review — 42

Ac. Gunratnasuri MS   Jin Gun Aradhak Trust

Aspects of Jaina Architecture and Art in Southern and Western India

Dr. K. V. Soundara Rajan

Among the apiritual paths followed in India in ancient times, continuing till today, alongside brahmanical Hinduism and having much fraternal historical relationship with it in Art and Culture, is Jainism which had the great privilege and capacity to integrate a large mass of trading communities in northern and southern India into a dedicated service to its traditions and usages and institutions. In that process, Jainism had not only become one of the most expansively diffused religions in India, but which by its academic and metaphysical insights, had carved a niche of its own and bound itself in the indigenous regional domiciliary contexts with the language and culture of these different regions of India, contributing signally to the very ethos of these regions, and no less, towards the creation of a monumental art heritage of pan-Indian character.

The two large regions which had received a lion's share of its historical presence, social evolution and literary and artistic attention, were the Dravidian South India (especially Tamil Nadu and Karnataka), on the one hand, and Western India—Gujarat and Rajasthan, on the other. By another collateral development, the former region became the most ancient and continuing centre of the Digambara Jaina traditions and moornigs, while the latter had its recrudescence in the form of the Svetambara traditions.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

It would be difficult to evaluate the signal contribution of the leaders, saints, intellectuals and academicians of the Jaina genre to the growth of prolific literature, grammar, Lexicon and technical treatises not excluding Vastu texts and sciences like astronomy, mathematica and Botany. All this was done without fanfare often and as the genuine regional facet of the social history of the times.

In the brief oompass of this article, the broad historical contexts and the chief architectural and artistic (sculptural and mural) high points of the Jaina traditions in Tamilnadu-Karnataka and Gujrat-Rajasthan would be high-lighted.

Of the upwards of 75 cave-shelter Tamil-Brahmi records known in Tamilnadu till now, a good majority relate to Sramana endowments and may support the theory that Sramana mendicants were sought after especially by the trading class for advice, blessing and spiritual services. A whole series of craftsmen comprising goldsmiths, cloth merchant, Iron-monger, salt merchant, lapidary and semi-precious bead seller were persons associated with endowments to the cavern 'beds' in their individual capacity and the largest such clusters were found around the metropolitan city of Madurai. By the ethical nature of their teachings, the early Jainism (or Samanar or Amanar as they were called drawn from the word Sramana) had not created then for itself any structural modes of shrines, but by about the 3rd to the 5th century A. D. the reliefs of the Tirthankara groups become common, as at Tirunatharkunru (where all the 24 tirthankaras shown in several rows are seen near an inscription referring to the death by sallekhana of one Chandiranandi after 57 days of fasting).

The entry of Jainism into Kanchipuram, the pallava capital. was made through the western periphery of northern Tamilnadu from the neighbouring Ganga region of Karnataka where Sravanabelagola and other centres ware located, and this explains why we find North Arcot district, besides western Tirucchi, Salem and Coimbatore districts of Tamilnadu contain the largest number of Jaina vestiges till today, like Vallimalai, Tirunarunkonrai, Tirunatharkunru, Arpakkam, Armamalai Tirumalai, Perunagar, Venkunram, Pridiyur, Vijayamangalam, Aracchalur, Ratnagiri, etc.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

Kanchi became important under the Digambara mission of Visakhacharya which, with several groups of immigrants–in the wake of the earlier Kalakacharya and the still earlier Bhadrabahu and Chandragupta of traditional fame–entered th Chola and Pandya countries, and Kundakundacharya the first mentioned in all southern Jaina anthologies—is referred to with distinction in the Kural of Tiruvalluvar. and the twin Epics, Chilappadikaram and Manimekhalai. Hieun Tsang mentions that in the cities of Kanchi and Madurai. the majority of 'devakulas' belong to the Digambaras living in those cities. Dharmasena (later called Appar) the Saiva saint and contemporary of Mahendravarman 1 Pallava. Nedumaran (or Kun Pandiyan) the Pandya king who was later converted back into Hinduism by Sambanda, the Saiva saint, Bhavanandi (or Pavanandi) the author of Nannul, a Tamil grammatical work, who lived in Vijayamangalam in the 12th–13th centuary A. D. the authorship of the twin epics mentioned above. bes des Jivaka chintamani, Neminatham, Yapperingalam and its karika, Chudamani Nighantu Perungadai written by Konguvelir and several other Tamil classics and grammatical tracts owe their origin to Jaina thinkers and leaders in early Tamil history.

Its is interesting that from almost the earliest stages, Jainism had been making common cause in art and architecture with brahmanical Hinduism. The cave temple phase for Jaina religion almost from the 1st century B. C. (as at Khandagiri caves in Orissa, near Bhubanesvar) or the cave shrines in Saurashtra (Gujarat) as at Junagarh, Talaja, Dhank etc., the cave temples in Karnataka as at Badami and Aiholi for Jainism and those of Tamilnadu as at Pecchiparai, Sittannavasal Aivarmalai, etc. had all been comparable more closely than with Buddhism–which brought a package milieu of Stupa, Chaitya and Vihara set–up for its religious edifices. The reason could be that while Buddhism got going in its translation of the personal aura of the Buddha in art and architecture from almost 3rd. century B.C., with Imperial royal as well as commercial patronagc in a very distinative social manner, both brahmanical Hinduism and Jainism had yet been pursuing their thrust on personal duties for an individual and with metaphysical and philosophical undercurrent informing their conceptualisation of the world and perfection of the individual, and it was from 1st century B.C.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

that their art exposition gets commenced in a systematic manner. The fact that Asoka refers to brahmanas and sramanas consistently as worthy of reverence would show that he desired that Bdudhism receiving his personal patronage had these two religions to contened with and should not have a confrontational posture against them, as these were elder religions.

The coordination between Jainism and Hinduism in art traditions, as referred to earlier in the cave temple patterns, had spelt a healthy sign for the growth in their art in the subsequent stages, as we find that from the 8th century onwards Budhism ceased to be a bulwark of architectural milieu and as an evolving or vital force, Jainism along with Hinduism however was a le to ha/e a common and viable art-pool which continued to keep its stamina for the next thousand years almost, in a growing virile, multi-faceted cultural and aesthetic garb for its worship focus of gods of the vedic and Puranic pantheon on the one side, and the 24 Tirthankaras milieu on the other, though it may be said that the former had often only royal patronage while the. latter had both royal and tradesmen patronage consistently. Eventually when Budhism disappeared from its parent country, the brahmanical and Jaina art traditions had built sound textually and artistically common trends for temple-building and common design repertory for its embellishments.

Thise closeness in each other's legacy wherein even iconography of both showed some nexus, as in Sarasvati or Krishna being Neminatha's brother etc., and the design layout in plan, elevation in these two religions. had helped enormously the art and artisan guilds to work with concerted energy and expertise in evolving forms and ornamental motifs for their temples in such a way that the Gujrat stone cutter became the most experienced and artistic designer of his curvilinear (Rekha) temple forms, while in the south Indian scene, several sub-regional variations of the main Vimana temple model had been coped with under Jainism as well.

The cave temple phases of these two religions alluded to in Orrisa, Karnataka, Tamilnadu and Gujrat, had some common features (even

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

with Buddhism) in the early stages, as in the double or treble storeyed shrines, as seen variously at the Khandagiri–Udayagiri caves of the time of Kharavela of the Cheti dynasty, like Rani gumpha etc. the Ellora Buddhist caves like Do-Thal and Tin-Thal (caves 15 and 14) and the triple storeyed cave on the southern court of Kailasa monolith (cave 16) for the brahmanical religion; and in the Anantasayanagudi cave at Undavalli on the Krishna river near Vijayavada.

The characteristic elements of Jain cave temples in the early phase (C.200 AD—600 A.D.) had been a transverse verandah porch where, along the extremities of the sides the presence of Parsvanatha relief on the one side and Bahubali relief on the other-both standing figures-were to be noted within this verandah, the central hall (or an oblong bay) shows an elaborate ceiling decoration (as seen at Aiholi, in the Mina-basti and almost comparably reflected in the other Ravulapnbadi brahmanical cave and may have side shrines while the axially inner stage shows the ardhamandapa with pillared facade, passing which one would enter the sanctum, This sanctum carried either individual Tirthankara figures like those of Mahavira or Neminatha or other, standing or a group of three carvings of seated Tirthankaras like Mahavira, Adhinatha and Neminath in Padmasana pose on a common pedestal.

When structural temples came into use from c. 7th century A. D. these generally carried carved shrines for one of the more popular Tirthankaras in that centre, either Adi or Rishabhanatha, Mahavira, Parsvanatha or Sambhavanath or Chandranatha or Santinatha, as seen in several instances, in the ground floor sanctum and, in addition as seen in Karnataka and upper Deccan, a secondary shrine within the hallowed out Sukanasa feature on the first floor roof. These are seen at Sravanabelgola, Ellora in the Chota Kailasa or in the Chandraprabha temple at Tiruparuttikunram and provided iu the Meguti temple Aiholi (but now disappeared). In Tamilnadu, as no sukanasa is employed in the temple design, such a shrine does not occur. Jain temples whether in Gujrat or Tamilnadu or Karnataka do not have secondary shrines in the premises but would have the full compliment of a cloistered layo wherein there can be circuits. However two ritual adjuncts are to be noticed. These comprise the Chaumukh shrine and the massive manastambha column at the entrance into the courtyard of the

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

temple, carrying on the top, Brahmadeva within a small pavilion or without it. It is not however uncommon to see triple or Trikuta temples for three main Tirthankaras, as seen in the Ganigitti Jinalaya at Hampi. There are also a cluster of five shrines–three in the centre of the courtyard triangularly placed with two more facing each other closer to the entrance, and the entire layout enclosed by a low prakara wall and pierced by a dwara mandapa at the entrance. This is seen at the Panchakutabasti at Kambadahalli in Karnataka. a Ganga temple creation of the 9th century AD. At Jina kanchi or Tirupparuttikunram, within the Trailokyanatha or Vardhamana temple enclosure, there are also several others which had been added from time to time after the late 11th century main shrine during Kulottunga I's time, not only of different times upto the 17th century but also of different designs like square, rectangular, apsidal etc. for Rishabhadeva, Pushpadanta. In this context, the magnificent complex at Shatrunjaya, Junagarh should also be recalled in Gujrat where perhaps the largest cluster of main and scores of secondary temples had been built. The main adjuncts to a Jain shrine in the Deccan, whether of the continuing cave temple stage as at Ellora Indra Sabha or in the structural temples like Meghuti at Aihole or Sankha jinalaya at Lakshmesvar, are the provision of the Yaksha and Yakshis of the respective Tirthankara at the entrance hall, and also the introduction of the Chaumukh shrine facing the main shrine in the courtyard it, atmost in the place where in Tamilnadu, the Manastambha is located. This Chanmukh (for four Tirthankaras carved, facing cardinal directions on a single slab placed inside a pavilion) or expanded into Chauvisi (or 24 Tirthankara) shown in vertical series of bhumis in a tower-like structure which can also be entered steps inside. for worship, is not known in Tamil nadu but is often seen in Gujrat also in the mediaeval times.

The South Indian Jaina temple is gennerally characterised by the Vimana type of temple, as for Hindu shrines, with the sikhara resting on the superstructure raised over the sanctum and with prakara around and Gopura entrance as well. In the Deccan, it follows either the Vimana mode where it is built by Rashtrakutas, Kalyani Chalukyas or Hoysalas but in the case of Yadava temples, they could often be of the Bhumija type. One such diffusing farthest south in the Anantapur district on south western Andhra desa at pedda Tumbalam, reflects the

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

movement of temple forms also alongwith the commuuities from upper Deccan used to a different temple form. In Gujarat or Rajasthan it follows the prevailing trends in different stages which had marked the evolution of the temple form which begins with the ekanda Prasada and grows into panchanda, na/anda etc. into the ultimate anekanda varieties called the Nav lakha temples. Between Gujarat and Rajasthan there had been a linked growth due to politicals way of powers over both from time to time and three main stages are clearly formula-rted the Gurjara Pratihara, the Maru-Gurjara and the eventual Mahagur-jata styles developing into the grand mansions at the last stage as in the Dilwara temples in the Arbuda (Abu) region, in the euna vasahi and the Vimala vasahi, organised into multiple parikramas with the devaku-likas of the Tirthankaras in cloisters in each and the gorgeous presen-tation of the ceilings of the domed central hall with Vidyadhari brackets and terminated by the kudmala pendentive. In the Malwa region and the Chandela region, the local styles of Rekha Nagara temple design is also adopted for Jaina temples, in the Bhumija and the urah-sringa' types respectively. The important temples for Jain religion in Gujarat are those at Varman, Sirohi, then in the Marwar zone at Kiradu, Savadi in Uparamala tract at Menal, in the northern Rajasthan at Osian, Lodhruva-patan etc. The finest early pratihara temple is the parsva-natha Basadi at Osian datable to the last quarter of the 8th eentnry A. D.

In Tamilnadu, there had been the association of the Pallis or religious centres of education attached to the Jaina temples and grants for their maintenance in the form of lands were called 'Pallichandam'. It is one such grant which incidentally froms the oldest copper plate charter in Tamilnadu of the time of Pallava prince Simhavrman in the 5th cent-AD, granting to one Vajranandi guru of the Sramana establishment at Tirupparuttikunram (Jina Kanchi) land in the Perunagar area, as 'Pallichandam'. Several such flourishing Pallis are mentioned in inscriu-ry ptions, variously the Melaipulli at Tirunarungonrai, Ainnurruva-peru-mpalli endowed by a merchant of the noted trade guild Tisai-5 0' in Tiruvennayil otherwise called Chettipatti in Pudukkottai district a structural temple of the 9th-10th cent, the Vada tiruppalli and the ten-tiruppalli at Narttemalai in the same district, the Perunnarkilli Chola

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

perumpalli near Pudukkottai town; the Vira sangata perumpalli at Vijayamangalam, and the 48000-perumpalli at Tirunarungonrai, to mention a few.

Samavasarana is one of the essential themes introduced in mural or geometric forms in the Jaina temples of southern India. The 'bhavyas' are supposed to inhabit it to listen to the discourses of the Tirthankaras. Before reaching the heaven, the souls are said to pass through several regions, including one of a lotus pool, with birds, fish, animals, makaras, elephants, bulls and men sporting there. One of the finest ever treatment in mural paintings is seen in the Sttannavasal cave temple on its inner mandapa ceiling. The 'bhavyas' are represented in colours like deep red (padma). orange (pita) etc., which along with the white (sukla) are considered as the colours of pure souls, as different from black (krishna), indigo (nila) and grey, of the wicked souls The techinque employed is the 'lime medium' in what is genuinely of the Fresco-seco style. They compare in their classic charm well with the Ajantan and the Srilankan Sigiria paintings. Sittannavasal cave was excavated in the 8th century or earlier under the early Pandyas but during the reign of Srimara Srivallabha known as Avanipa-sekhara, the mukhamandapa apparently in structural stone work to protect the painting within, was erected. The sanctum of the cave carries relief carvings on a common platform, in a seated pose. of Adinatha, Mahavira and an Arhat, while the outer mandapa shows on its northern wall of an Acharya seated cross-legged, with a single chattra above, while the opposite wall carries the relief of Parsvanatha, seated, with the fivehooded serpent above his head. Samavasarana depictions are also seen in Tirumalai cave chambers and at Tiruparuttikunram.

The southern Jaina temples are of plain exterior on their walls except for architectural details like pilasters, panjaras etc., but no niche figure even. It is mainly the interior that is lavishly decorated. In the Central Indian and Western Indian temples however the sculptural features are seen also on the outer temple walls, as in the Hindu temples. This primarily reflects the conservative character of Southern Jainism itself.

Even in the worship pattern of the southern Jaina temples also, one finds several differences from those of the Western Indian or northern

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

ones, For instance, the worship is conducted by the priest in the former whereas any lay devotee can also carry out the offeringe of flowers etc. personally to the image in the sanctum in the northern ones. The priest may often wear a sacred thread in the former. There are large clusters of images in bronze kept collectively and given flower offerings etc. but they are not expected to be taken out in procession like the Hindu ones; the corresponding usage in Western India is without bronze or brass deputy images. However, we see that in the Kushana period, there was a strong centre at Mathura which was making bronze images of Tirthankaras which were seemingly worshipped in temples. In the mediaeval southern Parsvanatha temples, there is a separate shrine for Padmavati yakshi on the north side of the sabha mandapa facing south, almost like the usage noted for brahmanical Devi shrines in the later Chola times.

That the texts of the Jaina temples were common with those of the other brahmanical temples styles is also seen vividly in the Panchakuta basti at Kambadahalli in Karnataka, where the central three shrines are beautiful chaste cut-stone versions of the Nagara, Dravida and Vesara forms of the Vimana order, exemplified by the square, octagonal and circular griva and sikhara for these. In the similar way, we have noted that in the Western India temples also (as indeed in the other regions) as well the format of the Jaina temple closely follows the development seen in the temple style from time to time.

The contribution of the Jaina art, architecture and murals as seen in Tamilnadu and Karnataka, on the one hand, and the elaboratelly rich design of the western Indian ones on the other form a distinctive commentary on the Digambara and Svetambara traditions thereby becoming complementary not only to each other but also to the Hindu temples and becoming a composite heritage in the process.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

Hūṇa Capture of Citrakūṭa

by Dr. S- V- SOHONI

In Somadev Suri's Nīti Vākyāmrtam there is a chapter on forts; and in connexion with his point that full vigilence was necessary in guarding forts. Somadeva Sūri referred to a historical incident to drive home his advice :

"श्रूयन्ते किल हुणाधिपतिः पन्यपुरवाहिभिः सुभेटः चित्रकूटं जग्राह

An unknown but quite old commentary on Nītivākyāmṛtam contains the following remarks--

घत्तु किल श्रुयते हुमाविपतियों राजा स जग्राह, कि तत् ? चित्रकूटं । कै वृत्या ? सुभेट् । कि विशिष्टः ? पम् पम्यपुरवाहिभिः पम्य पुरा क्रियाण कानां स्थगिकाः प्रयोध्यते तासां मध्ये प्रविध्य सायूवान् प्रभूतांस्ततों रात्रो निष्कामापत्वा दुर्गात्रपत्यं व्यापाद्य जग्राह ।

The text and the comment thereon do not add up to much. But the main point is clear : a fort called Citrakūṭa was conquered by an Adhipati of the Hūṇas by hiding weapons in sealed boxes or parcels of goods carried by his chosen warriors disguised as coolies. 'Paṇya' is that which is for sale and 'Puṭa' stands for the seals affixed on parcels or boxes. Therefore "पण्यपुस्याहिनि" stands for porters or labourers carrying such parcels or boxes for sale at a commercial centre or market. This much is clear from the text. The comment adds a minor detail viz. that disguised warriors set upon their operations at night.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

There is consensus amongst scholars that the Hūṇādhipati referred to by Somadeva Sūri was either Toreemāṇa or his son, Mihirakula. But, as regards identifying Citrakūṭa, while the minority view is that it was the hill of that name in Banda district in Uttar Pradesh, the generally accepted view being that this Citrakūṭa was Chitor in Rajasthan.

Both Toramāṇa and Mihirkula belonged to the first half of the 6th Century A. D. as regards their Indian career. Somadeva Sūri composed his works 400 years later i. e. in the 6th decade of the 10th Century A.D. Authors of works on daṇḍaniti in ancient India, generally selected historical incidents to illustrate their points which were, besides being well known, so divided in point of time as to cause no embarassment. It is to this outlook that we owe this Jain authors reference to a Hūṇa king's deceitful conduct.

It is, necessary to identify the Citrakuta fort. It is-submitted that the view that Citrakūṭa in Banda District is untenable view. There, it is a hill with a circumference of hardly a mile and a quarter. It has little or no strategic importance. As far as can be ascertained it was never a millitary post. Theres are no remains of any fort on that hill. On the other hand, in view of Rama having camped there. acording to Vālmiki's Rāmāyan. It has been a centre of piligrimage since ancient times. The belief that the Hunadhipati captured this place by employing the stratagem described above partly procceds from the position that Toramans, undoubtedly fought a big battle at Eraṇ, not far away in Sagar district, in the first decade of the sixth century

Citora in Mewad was not only a strategic point but was captured through treachery, after prolonged sieges, on more than one occasion. The prolonged sieges and the resort to deceitful devices doubtless presume the existence of a strong fortification. Citrakūṭa in Mewad is associated with several celebrated spells of brave conforntation with a determined invader.

In these circumstances. it is Mewad fort which was, most probably, referred to by Somadeva Sūri, since there is no third Citrakūṭa which has been deemed to be relevant in this context.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

There is an unexpected confirmation of this conclusion in an account left by Huen Tsang. Although thise Chinese pilgrim scholar of the 7th. Century could have been more accurate about it, his statement, though fully relevant, must be described as a garbled version. Very likely, it was not his fault but that of his informants. It may be recalled that Huen-Tsang has left a very vivid account of Mihirakula. Huen-Tsang doubtless felt it necesssary to do so because Mihirakula was an enemy of the Buddhist faith : and as such, was responsible for causing much damage to the Church and for loss of life among the faithful. He could not be omitted out of an account of a devout Buddhist pilgrimage in India in the 7th Century, A.D. I quote below the relevant extract from Huen-Tsang's account :

It would be noticed that while the strategem adopted by the King of Himatala is very similar to that referred to by Somadeva Sūri, the Chinese pilgrim mentions in more details viz. that the invader belonged to a different race,that the capital of the invaded King was also different i. e. not Citrakūṭa, and that the incident also took place in a period very much anterior to the Hūṇa invasion of India in the 6th Century A.D. According to Huen-Tsang, as interpreted by Samuel Beal, the invading King belonged to Tukhara i.e. eastern Afghanistan, was of the Śākya clan i.e. not a Hūṇa, and lived in the 600th year of the Nirvāṇa of the Buddha. i.e. in the beginning of the Christian era, some five centuries before the period of either Toramāṇa of Mihirakula. In view of these details it could be argued that, while the trick or strategem was more or less similar to that mentioned by Somadeva Sūri, its history and geography were entirely different. Thus it could be concluded that there should be no confusion between the two.

A more favourable view of Huen-Tsang's referance that can be taken in these circumstances might be that either the Hūṇādhipati, who admittedly, could count the Tukhara region among his territories, on independent evidence. I had either heard of the incident described by Huen-Tsang or was clever enough to devise his own deceits or tricks without any knowledge of precedents.

But a different view can be taken. I would begin by stating the well known point that Huen-Tsang, had himself assigned Mihir kula to

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

a period which he had put as several centuries prior to his pilgrimage in India. There is consensus among historians who have accepted Huen-Tsang's account of Mihirakula as dependable material for historical analysis. Huen-Tsang's chronology was completely wrong in putting Mihirakula several centuries before his time. The next detail is that our Chinese prilgrim did not describe Mihirakula's activities in the course of his account of Magadha proper. He has referred to Mihirakula, while describing the region far away from Magadha and much closer to Tukhāra—in fact, while recording his narration about Kashmir. Thus, both the chronology as well as geography of Huen-Tsang would stand correction, in respect of his account of the king of Himatala.

Cunningham, has recorded in clear terms, his view that Himatala stood for Hephtala or the white Hūṇa. In other words, since there is little distinction between Hephtalites and the Hūṇas, the king of Himatla, according to Cunningham, was, what we may call, a Hūṇādhipati.

But the objection would remain that assuming that it was a Hūṇa king, the king who had conquered this fort through such a trick, had ruled over or belonged to the race of Kiritiyas. According to the Chinese pilgrim's account, and according to both Beal and Watters in their translation and comments of Huen-Tsang's narration, that Kiritiyas stood for Krītas or those who were purchased i.e. slaves. Thus, it could be argued that these slaves had nothing to do with Citrakūṭa or the region in which it was situated. and that, the two references could not validly refer to the same incident.

On a close examination, however, it would appear that the confusion lies in the interpretation of Kirīyas as kritas had connoted. The Chinese word is 'ki-li-to.' in the first place, there never has been a race or community of slaves, in India, and slaves as such have never exclusively inherited any region in this country. Secondly. it would be still more strange and unlikely position that the power of the slaves should increase, once they were put down heavily or that they should bigottedly follow a heretic faith i.e. other than Buddhism and build their temples This is confusion worse confounded. following the initial mistake of holding that Kiritiyas stood for Krītas i.e. slaves,

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

There is an unexpected confirmation of this conclusion in an account left by Huen Tsang. Although thise Chinese pilgrim scholar of the 7th. Century could have been more accurate about it, his statement, though fully relevant, must be described as a garbled version. Very likely, it was not his fault but that of his informants. It may be recalled that Huen-Tsang has left a very vivid account of Mihirakula. Huen-Tsang doubtless felt it necesssary to do so because Mihirakula was an enemy of the Buddhist faith : and as such, was responsible for causing much damage to the Church and for loss of life among the faithful. He could not be omitted out of an account of a devout Buddhist pilgrimage in India in the 7th Century, A.D. I quote below the relevant extract from Huen-Tsang's account :

It would be noticed that while the strategem adopted by the King of Himatala is very similar to that referred to by Somadeva Ṣūri, the Chinese pilgrim mentions in more details viz. that the invader belonged to a different race, that the capital of the invaded King was also different i. e. not Citrakūṭa, and that the incident also took place in a period very much anterior to the Hūṇa invasion of India in the 6th Century A.D. According to Huen-Tsang, as interpreted by Samuel Beal, the invading King belonged to Tukhara i.e. eastern Afghanistan, was of the Śākya clan i.e. not a Hūṇa, and lived in the 600th year of the Nirvāṇa of the Buddha. i.e. in the beginning of the Christian era, some five centuries before the period of either Toramāṇa of Mihirakula. In view of these details it could be argued that, while the trick or strategem was more or less similar to that mentioned by Somadeva Sūri, its history and geography were entirely different. Thus it could be concluded that there should be no confusion between the two.

A more favourable view of Huen-Tsang's referance that can be taken in these circumstances might be that either the Hūṇādhipati, who admittedly, could count the Tukhara region among his territories, on independent evidence. I had either heard of the incident described by Huen-Tsang or was clever enough to devise his own deceits or tricks without any knowledge of precedents.

But a different view can be taken. I would begin by stating the well known point that Huen-Tsang, had himself assigned Mihir kula to

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

Sircar that the Śākāmbhar territory was known to have been called Saspādalaksa. Thus Saspādalaksas was the Sambhar lake region. I do not think that this name survives as Śivalik, which range of hills is far too much to the North. The Kāma country tributary to the king of Sapadalaksa mountain, could be modern Kāmaṇ near Bharatapur in Rajasthan. In fact. Hūṇa-desa has been placed to the North of Maru-desa, in a late Tantrik work called 'Śatanchāsat desa vibhāgs' which is a part of Śakti-saṇgama Tantra dealing with 56 pilgrim centres, mostly Saiva and Sākta Tīrthas- D.C. Sircar has observed, "The earliest work containing a list of 56 countries seems to be the Candragarbha-sutra or Candragarbha-vai ulya, which was translated into Chinese by Narendra Yasas in 566 A.D."

These details are enough to indicate that Hūṇas were very much concerned with the Rajasthan area, having occupied regions to its North and to its West, in the course of their initial advances eastwards of the Indus. But the point that it was Chitor in Mewad which was referred to by Somadeva Sūri is conclusively proved, by a circumstance stated in the Arabic work Chach-name "to record the conquest of Sindh in 713 A. D., not far away in point of time from the Hūṇa age of Toramāṇa and Mihirakula. This work records that in a region of the east or Sindh, the ruler of Chitravar or Chitor was said to have been a relative and ally of the King of Sindh displaced, by the Hūṇas around 627 A.D.

'Ex-Lokoykta' Behar
Pune

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

Bālachandra Sūri And His Works

by Dr. Keshaw Prasad Gupta

Bālachandra Sūri the author of Vasantavilāsa Mahākāvya was one of the famous peots of Jain and Sanskrit literature. Some other authors having the same name of Bālachandra were Bālachandra Pandita Deva and Bālchandra Gaṇi.

Bālachandra-Pandit Deva as known from inscriptions was probably a follower of the Digambara Sampradāya and was the pupil of Nemichandra Bhattāraka and Abhayadeva Siddhānta-Chakravartī[1]. He composed a commentary on the 'Sārachatustaya[2]'. He was a well-known personality of his time and was respected by all the poets[3]. He died in Śaka Saṃvat 1197[4].

Bālachandra Gani, who composed the Kavya 'Snātāsyā' was the pupil of Hemachandra in the period of Chaulukya kings Siddharāja Jaya Siṃha and Kumārapāla of Gujarat[5].

Bālchandra Sūri was the pupil of Haribhadra Sūri of the Chandra gaćcha. In the first canto of Vasantavilāsa Mahākāvya, the poet has given the account of his early life. According to that discription. there was a famous Brahmin named Dharādeva, in the town of Modheraka[6].

---

1. Pt. Vijyaya Mūrti; Jain Silālekha Saṅgraha; p. 371. N. 524.
2. Ibid; p. 366, N. 514
3. तं बालचन्द्र-मुनि-पण्डित देवमस्मिन् ।
   लोके स्तुवन्ति कवय: परमादरेण ॥ Ibid; p. 365 N. 514
4. Ibid; p. 364, N. 514
5. Dr. V. B. Musalagawakara Āchārya Hemachandra; p. 193
6. In Kādi district of Gujrat Pradesh

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

He gave protection to the people in distress and was accquainted with the doctrines of Jainism. The mendicants coming to his house, never returned empty handed. He had a wife named Vidyutā. They had a son named Munjāla who thought that the world was an illusion even when he was a child. Ha got his religious enlightenment from Haribhadra Sūri. He took the vows of a Jaina mendicant with permission of his parents[1].

Knowing that he will be gradually fully ordained with all phases of knowledge, Haribhadra Sūri made him his pupil with the name of Bālachandra. Sensing his approaching death, he announced him his successor. Padmaditya who was an epitome of learning was his tutor. Udaya-Prabha Sūri of the Gaććha of Vādi Deva Sūri gave him the Sārsavata charm[2].

The Goddess of learning once appeared in his contemplation (Yoganidrā) and told him that she was pleased with his devotion to her from his early age and he was to her like a child as was Kālidāsa and other great poets[3], The Upadesakandalī Vrtti also testifies to this event of Yoganidrā[4].

The Prabandhachinatāmani says, that Vastupāla was pleased with the poem composed in his praise by Bālchandra and he spent four thousand drammas for getting him proclaimed as an Āchārya.[5].

Not much is known about the later life of Bālachandra Sūri. Possibly in his later life he visited the holy places and spent his time in writing. Bālachandra Sūri was associated with Vastupāla.[6] He composed the Karuṇāvajrāyudha in the period of Vastupāla[7] and the Vasantavilāsa in the period of Jaitar Simha, the son of Vastupāla[8]. and thus he may have lived between V. E. 1220 to 1320.

1. Vāsantavilāsa. canto—1, Verses—41-53.
2. Ibid; canto—1. Verses—54-57.
3. Ibid; Canto—1, Verses—70-72.
4. Bālachandra Sūri ; Upadeskanadlī Vrtti Verse 14.
5. इन्युक्ते तस्याचार्यपदस्थापनायां द्रम्मसहस्रचतुष्टयं व्ययीकृतम् ।
Prabandha-Chintāmani; p. 103,
6. Prabandha-Chintamani, p. 99.
7. Vasantavilasa : Introduction. p. 2
8. Ibid; Canto—1, Verse—75.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

Works of Bālachandra Sūri

Bālachandra Sūri composed the following works in Sansktit—

1. Vasantavilāsa
2. Karunāvajrāyudha
3. Vivekamañjarī-Vrtti
4. Upadesakandalī-Vrttī

According to Dr. Ramjee Upadhyāy he also composed the 'Kathāratnasāgara' in 15 tarangas, on the request of Vastupāla.[1] but no authetic reference to this work is available.

1. Vasantavilāsa

The Vasantavilāsa is a historical Mahākāvya in 14 cantos. It contains the life of Vastupāla (Vasanta) the well-known minister of Vīradhavala of Dholaka and depicts the character of Vastupāla when he was a minister and up to his death. The work was composed in the praise of Jaitra Simha, the son of Vastupāla[2], obviously after the death of Vastupāla, but as the author was a contemporary of the minister, this poem possesses all the authenticity of a contemporary work.

The author has not specified the date of its composition and it is thus not possible to predict the year in which the present work was actually composed. However by the mention of Vastupāl's death which occurred in V. E. 1296.[3] and as the work was composed for the delectation of Vastupāl's son, we can easily put the date about the end of the thirteenth and beginning of the fourteenth century of Vikrama.

---

1. A critical History of Sanskrit Literature,part—I, p. 374.
2. श्री जैत्रसिंहस्य मनोविनोदकृते महाकाव्यमुदीयंते ह ॥

Vasantavilāsa, Canto—9, Verse–75.

Someswara worte the Kīrtikaumudī in 9 cantos and wrote the Sukrītasankīrtana Thakkura Arisimha, in 11 Cantos, about VE 1296, on the life of Vastupāla, during the life time of the minister himself.

3. Vasantavilasa; Canto—14,Verse—37.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

The first canto of the Vasantavilāsa is introductory. After dilating on the nectar of poetry, the poet gives his personal history. He also describes how the Goddess of learning, pleased with his devotion towards her, had blessed him. The poet informs what qualities Vastupāla possessed so as to deserve to be made the hero of the present poem.[1]

In the second canto, the poet describes Aṇahillapurapattna, its temples, buildings, fort, ditch and the Durlabharāja Tank.

In the third canto, there is the description of the kings of Gujarat from Mūlarāja to Bhīmadeva II, and how Vīradhavala and his forefathers ptotected the kingdom of Gujarat from being partitioned by feudatories. The appointment of the two brothers Vastupāla and Tejapāla as ministers, is also mentionel here.

The fourth canto is in the praise of the two able ministers. The appointment of Vastupāla as a Governor of Khambhāta is also described in this canto.

The fifth canto narrates the fight of Vastupāla with Śaṅkha of Bhrigukaććha and the defeat of Śaṅkha.

The sixth, the seventh and the eighth cantos contain the conventional poetical description of the season, sports and pleasures and the beauty of the moon and the sun-rise.

In the ninth canto a one-legged God (Dharma) appears to Vastupāla in his dream.[2] Having told him how his position had declined at present and what a high position he enjoyed in the past, He commands Vastupāla to work for the promotion of piety. The minister then woke up by the sound of the morning drums and the churping of the birds.

The cantos ten to thirteen contain a description of Vastupāla's pilgrimage. Entrusting the burden of the state to Tejapala. he set out on the pilgrimagc. Four feudatatory chiefs accompanied him and the

1. नले च रामे च युधिष्टरे च वशीकृता: यै: कवयो गुणास्ते ।
श्रीवस्तुपाले स्म वसन्ति सम्प्रत्यतस्तदीयं कवयामि किञ्चित् ॥

Ibid; canto 1, Verse 76

2. Vasaniavilāsa; canto 9, Verse 1

Ac. Gunratnasuri MS   Jin Gun Aradhak Trust

Saṅghapaties from Lāta, Gauda, Maru, Kaććha, Dāhala, Avanti and Vaṅga also joined him. He provided all the necessities and comforts to the pilgrims. He visited the temples in the way and after a halt at Valabhipura, he reached Pādliptapura. Here he worshipped in the temple of Pārs vanātha. The pilgrims then ascended the hill. After worshipping Kapardin yakha, the minister entered the temple of Ādinātha at Śatruñjaya, where he worshipped in eight defferent ways. A dance was performed before the image of Ādinātha. From Śatruñjaya the Saṅgha turned towards Prabhāsa Pattana. There Vastupāla worshipped Someśvara, bathed in Priyamela Tirtha and gave gold and jewels to the Brahmins. Here he also worshipped Chandrabha, the, eighth Tirthaṅkara. The Sanngla then proceeded to Mt, Girināra, ascended the mountain and worshipped Neminātha. From there the Saṅgha returned to Dholka and entered the city in a royal way. Vastupāla gave a dinner to the pilgrims and honoured them, and gave presents to his friends, the Brahmins, the yatis and his religious preceptors.

In the fourteenth canto, the poet, describes the religious deeds of Vastupāla and of his death in a dramatic way. According to the poet, Vastupāla reached Mt Śatruñjaya before the image of Ādinātha to marry Sadgati, the daughter of Dharma, on Sunday in the morning of the 5th day of Māgha, in V. E.1296. There Dharma gave his daughter to Vastupāla before Ādinātha and then took him to heaven. where he was received with exultation by the lord of Heaven.

2. Karuṇāvajrāyudha

Bālachandra Sūri composed Karuṇā vajrāyudha. a drama in five acts, at the time of Vastupāla's pilgrimage to Śatruñjaya and was first acted there in the temple of Ādinātha at the command of Vastupāla.[1] It is thus clear that the author had already begun his career as a writer in the time of Vastupāla.

1. C. D. Dalāla, Vasantavilāsa ; Introduction. p–2

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

The hero of this drama is Vajrāyudha Chakravartī, who saved the life of a pigeon (Kapota) from an eagle (Śyena) by offering the flesh of his body, A similar story may be seen in the Vana Parva of the Mahābhārata in the story of Śivi and Kapota. The story number 499 of the Bauddhajātaka is also similar. In the Jain literature of stories it first appears in the 21st Lambhaka of the story book of Soṅghadāsa Gaṇi.

King Vajrāyudha, son of Kshemendra Jindhipa, was talking to a minister named Purusattama at the pośadhaśālā to complete his pośadha-fast of Chaturdasī. They were criticising the propogation of violence in the Vedic religion and were of the opinion that Jainism is the only religion with the help of which prosperity and heaven may be attained.[1] The main part of this religion is meditation.[2] At that time a pigeon, followed by an eagle, fell down into the lap of the king. The eagle immediatly asked the king to give the pigeon to him. The king refused and offered him instead sweets to satisfy his hunger. But the eagle told the king that he was interested in e ting meat only, so the king started to cut flesh from his body to satisfy the eagle's desire. The queen Lakshmīvatī restrained the king. But he told her that the mortal body of human beings was only to help others[3]. When the king saw that the flesh offered by him from his body was less in weight with that of the pigeon, he presented whole of his body to the eagle. At this noble deed of the king the gods had all the praise for him. The king was cured and both the birds also disappeared.

The drama was written for the propagation of Jainism with the help of an interesting plot. The Vedic religion is highly criticised here. There are 137 verses in the drama which are mostly in form of dialogue. There is a long Viskamabhaka too which is not suitable for a drama of

---

1 एकं जैनं विना धर्ममन्ये धर्मा कुधीमताम् ।
संवृत्ता एव शोभन्ते पटच्चरपटा इव ॥ Karunnavajrāyudha, Verse—40

2. Ibid; Verse—54

3. Ibid;—Verse—89

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

this size. In the drama, pigeon and eagle flew together and spoke in Sanskrit. So, without any scientific means the drama seem; very complicated.

3. Vivekamanjari—Vrtti

Poet Āsada, the son of Kautukarāja, had composed the Viveka mañjari in 144 verses. It was composed in V. E. 1248 in the Jain Mahārastrian Prakrit. At the opening of the poem. there is the prayer of Tīrhankara Mahāvīra. The importance of Viveka (Discretion) is described here in detail. The poet has indicated that a piôus-hearted man could easily gain Viveka.

Bālachandra Sūri has composed a commentary (Vartti) on the Vivekamañjarī. A manuscript of this work written in V.E. 1322 has been obtained[1], in which the examples given in the Vivekamañjari are explained with the help of many interesting stories. The stories of Bāhubali Sanat Kumāra, Sthūlabhadra. Abhaya Kumār, Sīta, Damayanti Vilāsavatī, Añjanā sundari and Narmadā sundari etc., are full of knowledge and preaching. The four main causes of Viveka, described in the Vivekamañjari are named 'Parimala by the present poet. There are 25 stories in the first Parimala. The introduction of Abhayadeva sūri, the teacher of Haribhadra Sūri of Chandragaćcha is also given in the commentary.

4. Upadesakandali—Verti

Upadeśakanadali of poet Āsada is also composed in the Jain Mahārastrian Prakrit. There are 125 verses full of many important lessons on moralty. The work was composed as a result of preachings of Abhayadeva Sūri.

Bālachandra Sūri has composed a commentary (Vrtti) on the Upadeśakandali in 7600 verses at the request of Jaitra Simha, the son of the poet Āsada. A manuscript of the commentary written in V.E.

1, Jaina Sāhitya kā Itihasa. Part-4, P. 216

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

1296 has came to light. Some part of this work was published in the 'Descriptive Catalogue of Government collection of Manuscripts. Praduman; the pupil of Kanakaprabha Sūri of Devendragaćcha and Padmachandra, the pupil of Dhaneśwara Sūri of Brihadagaccha, helped in composing the work.[1] The work begins with the praise of the Chandragaććha[2] and mentions all the Jaina Āchāryas of the Gacch from Pradumana Sūri to Bālachandra Sūri. The exposition of the preachings is presented in an impressive manner with many examples in the present work.

Appreciation:—The most successful and important work of Bālachandra Sūri is the Vasantavilāsa Mahākāvya. Here is the systematic history of the Chaulukyā-Kings of Gujarat in detail and is the last work of the poet's life. The drama Karunāvajrāyudha may not be said to be a successful drama from the dramatic point of view. But, his commentaries on the Vivekımañjarī and the Upadesakandali are praise-worthy.

—Charawa, Allahabad
212 203

1. Jaina Sāhitya Kā Itihāsa, Part—4, p. 198.
2. Upadeśakandali Vrtti; verses, 1—2.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

Sahu Shreyans Prasad Ji, as I knew him.

—Subodh Kumar Jain

Now that Sahu Shreyans Prasad ji is no more, one can truly feel the vacuum caused by his death. He was a national leader of high integrity who was held in esteem not only in the Jain Samaj but much more *in other society* as well

Politlcaily he was a stalwart, a freedom fighter who was jailed by the British for being close to Jai Prakash ji, the national hero of 1942 *Quit India movement.*

After Independence the Indian Govt. led by Nehruji nominated him as a member of Parliament in the upper house and thus acknowledged his contribution to the cause of India's freedom.

Later, he was honoured by the Congress party and the Govt. of India, who bestowed upon him the coveted title of 'Padm-Vibhushan.'

He was an industrialist honoured by top industrial houses of India. This was unique in many ways. Tatas and Birlas adored him and they relied on his advice and mediation on important issues. He was related to the house of Ram Nath Goenka, head of the Indian Express. Goenka's son Bhagwan Goenka was married to Sahuji's daughter., Saroj. The elder Goenkaji told me in so many words how much he owed to Sahuji and how much be adored him. 'He is great'—he told me. We talked in detail while we were staying together with Sri Jaidayal Dalmia in Delhi for 2 days. many years back, when Goenkaji was not a very big man.

One of Sahuji's son was married in the Singhania house. *with them also* he was their friend and guide.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

He had the God given gift for sweet talk and solving disputes among men and institutions. It is however my greatest grief that he could not solve the long standing dispute between Swetamber and Digambe Jain community concerning Sammed Shikhar (Parasnath Hill)

When I negotiated and solved the troublesome dispute with the Swetambers over land properties at Pawapurji; he sent to me a congratulatory letter atonce as soon as he saw the signed agreement in his capacity as President of All India Digamber Jain Tirth Kchestra Committee and Bihar State Dig. Jain Tirth Kchestra Committee as well. I was then Hon. Secretary of the Bihar State Digamber Jain Tirth Kchetra Committeee. I remember that we always had identical views, on every matter we discussed regarding the Kchetras.

As a host he was simply marvellous I can not forget those days when I stayed with him at Bombay in the year 1947-48. Once I insisted that I would stay in his guest-house located over his office flat in the city. He diputed part of his kitchen staff to look after my fooding comforts. He sent his eldest son Gyanji to receive me at the Railway Station. Gyanji took me round his cactus-garden which he claimed as one of the best in India. Sahuji used to laugh at Gyan's enthusiasm for Cactus plants and yet appreciated his love for gardening.

Sahuji, for all I know of him, was himself not of a poetic nature but he quoted Urdu couplets from great composers on every appropriate occasions. He had a grand presonality, a winning smile, soft and sweet voice and a dominating look.

We worked togethar for the Kchetras and for Varanasi Syadvad Sanskrit Mahavidyalaya for several years with complete oneness and dedication.

I can never forget him. He and my father (Sri Nirmal Kumar Jain) were close friends and I first saw him when he and Shanti Prasad Ji and Ramaji came to stay with us at Kalimpong (Darjeeling) for a week with some of their children,

I offer my high regards to this venerable, person, I had yet sweet memories of Sahuji, who is no more with us.

—Devashram, Arrah

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

Jaina Society through the Ages

—*Dr. Vilas Sangave*

The study of Jain Society in a scientific way is a recent development in the Jainological studies which had concentrated all these years on the study of Jain religion, Jain literature and Jain art, & architecture. The study of Jain society has been neglected as the information had to be collected from different sources which are not easily available. But recently with the publication of the book "Jain community : a social survey" by me, various social scientists like Sociologists, Social Anthropolgists and Social Historian began to devote their attention to the study of Jains as are ligious minority in India. At present foreign universities like Cambridge & Oxford have undertaken elaborate studies on various aspects of Jain Society.

In the context of Indian society the Jain community has got a distinctive and important place. The Jain community, though a minority, community has got a national character from various points of view At the same time it is an independent community and a prestigious community in India for several reasons. Even though it is an ancient community, it has a continuous existence which is not found in many other minorities. The excellent organisation of the community, the inflexible conservatism of Jains, the grant of royal patronage, the influence of eminent Jain Saints, securing good will of people and the maintenance of cordial relations with Hindus have been the main reasons/ responsible for the survival of Jain community during the ancient & medieval period of Indian History. But after the middle ages the Jains began to decline in importance due to different reasons especially due to increase in religious & social divisions in the community.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

In the contemporary period various influences of western culture have been working on the behaviours of the people. As a result we find that there have been growing religious dissensions, lack of community feeling & laxity in religious behaviour of the people.

In view of this it is hoped that if the internal dissensions amongst the Jains are reduced and the ideal of Ahimsa is thoroughly practiced, the Jain community will have a continuing function to play in the life of Indian that cannot easily perish.

Honorary Director, Sahu Research Institute
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

Prakrit Dictionary Project Undertaken By B.O.R.I.

—Mrs. Nalini P. Joshi

The Bhandarkar Oriental Research Institute of Pune has undertaken Prakrit Dictionary Project with financial help from Sanmati Teerth Trust.

The full designation of the project will be "A Comprehensive Dictionary of Prakrit with special reference to Jaina Literature" The Prakrit dialects included in the Dictionary are : Ardhmagdhi, Magadhi, Mahara tri, Jain Maharashtri, Sauraseni, Jain Sauraseni and Apabhransha. Very roughly estimated, the number of all Prakrit works (published and unpublished) would be about 500. In the selection of books, quality and variety, both these points are taken into consideration. We are so careful about the selection that it will represent the large bulk of Prakrit Literature, Jain Canons, Dramatic Prakrit, Epic Poems, Lyrical and Gnomic Verses, Philosophical Works, Logic, Dogmatics, Ritual and Literary works like Narratives, Life Stories, Hymns and Didactic works, Insciptional Prakrit and some important manuscripts are also included in these books for extraction.

The existing Prakrit Dictionaries are not satisfactory from the following points : a) Vocabulary b) Choice of books c) Choice of editions d) Names of books e) Citation f) Cronological arrangement. The number of words in the published dictionaries is estimated to be about 70,000. While this Dictionary will contain as many as 1,50,000 entries. Normally an entry will contain the word given in Devnagari followed immediately by its Roman transliteration. Then the Sanskrit

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

counterparts are traced b ck in Roman transliteration. All the grammatical information is given, indicated by various abbreviation. All the possible meanings are given only if we find them in use. Necessary citations are given and they are arranged chronologically. Compounds are also included. In case of technical words. description is given which is useful for understanding. Information about persons, towns, rivers, forests. mountains countries etc. will be kept to minimum. One peculiarity of this Dictionary will be the extensive use of cross references at the end of an entry so as to indicate its relations to other words in the language.

This Dictionary is meant to be used by scholars of Prakrit language and literature, students of Jain religion, Philosophy and Logic and linguists in the field of Indo-Aryan as well as laymen. The time needed to collect the material, edit it and publish it in a book form can be estimated very vaguely. It cannot be less. than 10 years. An outlay of Rs. 5 Lakhs a year may be considered as reasonable.

Renowned scholar of Sanskrit, Prakrit, Linguistics and English Dr. A M. Ghatge is the Chief Editor of this Dictionary. Four Editorial Assistants are helping them. The work started in April 1988. So far, all the existing Dictionaries are extracted, 150 books are extracted and the material for 100 printed pages is ready. The number of the slips is huge, Considering the non-availibility of Prakrit Scholars and considering the financial limitations. we can say that this project is really in good progress. The credit goes to the gigantic scholar Dr. A. M. Ghatge !

This project is started with the financial help from Sanmati Teerth Trust. Hon Navalmalji Firodia and Advocate U. K. Pungliya are personally taking keen interest for the good progress of this Dictionary. BORI has undertaken this project and Prof. Dr. R. N. Dandekar also guides for this project. The grants are sanctioned by U. G. C. but still are not received. In this critical conditions, both Sanmati Teerth and BORI are encouraging the scholars with solid financial help, so we are grateful to them.

Prakrit Dictionary Project
B. O. R. I. PUNE 411 C04.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

Jain Vishva Bharati Institute

(Deemed University)

DIGNITARIES AND OFFICERS

Anushasta	: *Rev Acharya Shri Tulsi*
Chancellor	: *Shri S. C: Rampuria*
Vic Chancellor	: *Dr. Ramji Singh*
Registrar	: *Dr. Nalin Sashtri*

AN INTRODUCTION

Jain Vishva Bharati was established in 1970 under the inspiration of Acharya Shri Tulsi, the great saint of modern India and the preceptor of the now internationally known Anuvart movement for bringing about the moral transformation of society. He thought of establishing a unique centre of non-violent and culture wherein learning and research would be blended with sādhanā i.e. training in and practice of non-violence (Ahimsā), non-possessiveness (Aparigraha) and non-absolutism (Anekānta). In order to concretise the said dream, the Jain Vishva Bharati sponsored an institution under the name and style of Jain Vishva Bharati Institute (JVBI). The Jain Vishva Bharati Institute came into being on 20th March, 1991, when the Central Government (The Ministry of Human Resources and Development) in consultation with the University Grants Commission notified it as a 'Deemed University' under section 3 of the University Grants Commission Act, 1956. This Deemed University encompasses and takes into its fold the academic function of the parent organisation of Jain Vishva Bharati with broad objectives of:

(a) Creating non-violent personality, and

(b) For developing an educational system devoted to world-peace and ahimsā.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

The Jain Vishva Bharati Institute (JVBI) thus appears as a new planet on the horizon of Universities in the light of which will be ensured rejunevation of human society and development personality wedded to the principle of non-violence. A balanced co-ordination of science and spirituality only can create a balanced personality. The sprit-ual-cum-scientific personality is a pre-requiste for non-violent personality.

The Jain Vishva Bharati Institute (JVBI) is not a mere replica of a traditional University. Unlike other Universities offering courses in verious arts and science, where emphasis is laid primarily on academic subjects, the Jain Vishva Bharati Institute (JVBI)'s avowed aim is to integrate academic knowledge and application of the same for evolving a new social pattern based on non-violence and peace.

APPRAISAL

The Jain Vishva Bharti Institute(JVBI) has initially started only the following four teaching department where Post–graduate teaching is being conducted as an initial activity.

The Department of Non–violence and Peace–research :

This department will provide the perspective of a non-violent set-up and world-peace with particular reference to the principles of Ahiṃsā (Non–Violence), Aparigraha (Non–acquistiveness) and Anekanta (Non–absolutism).

This department seeks to train the human mind to be tolerant and to develop mental understanding in matters of common interest and bring about the conflict resolution through the development of spiritual-cum-scientific personality in the hope that a balanced co-ordination of science and spirituality only can bring about lasting peace.

The Department of Jeevan Vigyan (Science of Living), and Preksha Meditation :

This department seeks to provide training for the balanced living includes studies in Ecology, Environmental Awareness, Therapeutic Techniques for attaining physical, mental and emotional health and

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

training in Non-voilence with applied psychology. This course comprises of theoretical and practical teaching with a THRUSTon the development of balanced physical, mental and emotional healh of the individual and society. It includes interalia, the study of the human organism, the human mind and human society. The core content is Preksha Meditation which is a technique for self-introspection and concentration of mind on the psychic centres which in turn effect the functioning of the neuro-endocrine system. The endocrine system is responsible for attitudes and behaviour of a person. Hence, regular practice of Preksha Meditation enables one to attain desirable attitudinal change and bahavioural modification through the management of the emotional system.

The Department of Jainology;

This department is conducting in-depth studies in Jain Metaphysics, Ethics, Spritual Practice (Sādhanā), Epistemology and Logic and also the comperative study of various religions with a view lo bring about national integration.

The Department of Prakrit Language and Literature :

The department seeks to provide specialized studies in Prakrit including Ardhamagadhi. Shaurseni, Maharastri and Apabhramsa Languages, their literature and history. The general principles of Prakrit Philology, Jain philosophical and canonical texts (Āgamas) as well as the new Indo-Aryan languages will also find place in the curricula. This Department seeks to link the lost thread between the ancient culture and modern civilization.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

The Greatness of Gomateshvara

—Dr. Jagdish Chandra Jain

Why did Jains migrate from traditional Magadha (modern-day Bihar), the birthplace of Jainism and the centre of activities of Lord Mahavira, to the South ? We are told that at the time of Chandragupta Maurya (325-302 BC), there occurred a terrible famine in Bihar when Jain monks could hardly manage to get sufficient alms. The occurrence of floods may have been another reason why the Jains chose to migrate. Crops failed and food was scarce and it is said the town of Shravasti (Sahet Mahet in the district of Gonda in UP) was almost destroyed because the river overflowed frequently.

According to one tradition, some Jain monks, during the famine period, migrated to the land of Karnataka under the leadership of Bhadrabahu. Needless to say, this beautiful land of sandalwood trees, emitting fragrance and aroma all over, cardamom, black pepper, cloves, areca and nilgiri trees yielding timber, oils and gum, coffee plantations, orange groves, rice fields and above all, a variety of pretty flowers of different colours, must have inspired members of the Jain community much more than the dry plains of the region of Bihar.

The Jains soon adjusted to the environment of the new land and, by sheer dint of hard labour, they came into prominence and occupied the position of class one citizen of the land. As a result, they held signifficant positions in royal faimilles as rulers, ministers, generals, commanders and, above all, commercial magnates of the land.

Kannada or Karunadu or Karnataka covers Mysore, Coorg and parts of the ceded districts, have been a home for Indian culture for the past

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

many years. It was here that great Indian empires like the Kadambas, the Gangas, the Chalukyas, the Rashtrakutas and the Hoysalas ruled for hundreds of years, contributing a good deal to the development of Indian culture.

The Ganga dynasty was the earliest to promote Jainism in Karnataka from the 2nd to the 11th century AD. This is called the golden period of the advancement of Jainism. During this era numerous Jain temples and shrines were erected, Jain idols and statues consecrated, caves were hollowed for the benefit of Jain monks and various grants of lands and villages were declared open to them.

It is to be noted that unlike the North, South India is known for its magnificent temples dedicated to Lord Shiva and Vishnu. It was on the pattern of these temples that Jains started constructing idols or statues for the propagation of their religious doctrines. They felt dignified in building such constructions and considered it to be a meritorius deed leading to the highest achievement of life, that was the release from worldly existence. This attitude certainly helped the development of a distinct style of developing art and architecture in Karnataka.

This is evidenced in exquisitely sculptured shrines at Halebid, Belur Somanatha and other places. At Halebid, we have highly polished and artistic pillars in the Hoysala Basadi. Here we have the guardian deity, the Dvarapals, decorated with ornaments at Hoysaleshvara temple. The largest and the most famous temples at Halebid & Belur have no towers; it is said they were not completed, whereas, some smaller temples of the same period (12th century AD) have towers, notable amongst them being the charming temple of Somanath. As a matter of fact, the whole of Karnataka is covered with such artistic monuments, pillars, temples and sanctuaries.

Coming to the colossal statue of Gommateshvara (Bahubali), it is a product of the Ganga dynasty. It was great Chamundraya (or Chavundaraya), the minister and general of the Ganga kings who was responsible for the installation of the image of Gommateshvara at Shravanabelgola. It is said there was not a more brilliant general and a devout Jain or an honest man than the General Chamundaraya, in the whole of Karnataka. He had combined rare virtues of religious piety, scholarly

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

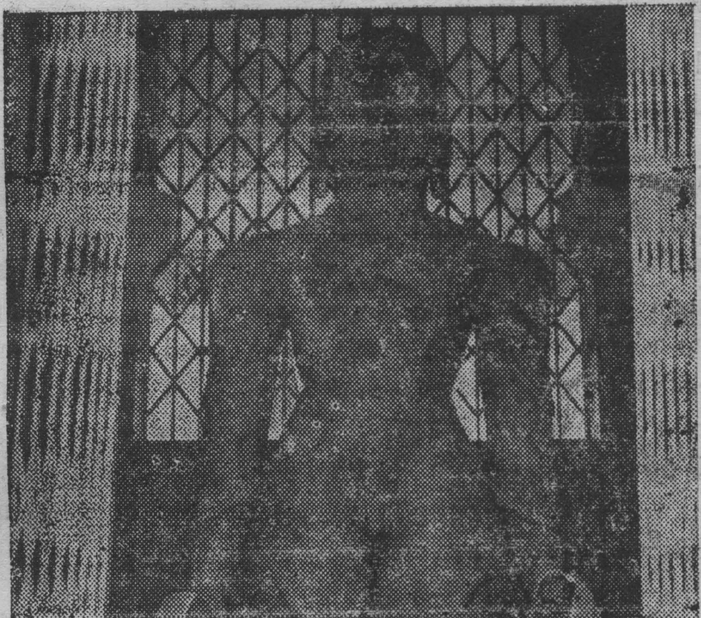

The 57-foot monolithic statue of Gommateshvara or Lord Bahubali, whose grand Mahamastakabhisheka or anointing ceremony—the last in this century-took place in the pilgrim town of Shravanabelagola in Karnataka on Dec. 19, is, perhaps, the single most important feature representing both the richness and vastness of Jainism. In this in-depth article; historian Prof. (Dr.) J. C. Jain explains why Jains migrated from traditional Magadha (now Bihar) to the South, and the community's contribution to Indian cultural history.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

temper and unparalleled heroism on the battlefield. The well-known Nemichandra Siddhanta Chakavarti was his religious guru. Chamundaraya himself was an author of several works—his Chamundaraya -purana in Kannada being the oldest prose works in Kannada literature.

This marvellous statue of Gommateshvara, one of the wonders of the world, stands bolt upright in meditation posture, with feet firm on the earth and arms held downwards but not touching the body, the face bearing a faint smile. This artistic and symmetrical statue hewn and shaped into a huge, splendid colossal figure, carved out of a single block of granite stone, forms the top of a mountain. It is 57 feet high at the top level of the mountain. The skilled artist. whose name is not known, has chiselled the different parts of the face with perfect proportions, the round head with attractive curly hair, straight nose, smart shining eyes and propôrtionate pretty lips.

One of the earliest serious students of ancient Indian sculpture, James Ferguson. has said; "The statues of this Jaina saint are among the most remarkable works of native art in South India—The figure carved in fine grained light-grey granite has not been injured by weather or violence, and looks as bright and clean as if just from the chisel of the artist. The face is its strong point. Considering the size of the head, which from the crown to the bottom of the ear, measures 6 feet 6 inches, the artist was skillful indeed to draw from the blank rock the wonderous contemplative expression touched with a faint smile with which Gommata gazes out on the struggling world .."

This colossal statue of Gommateshvara was installed in 983 AD by the order of the great Chamundaraya, also known as Gommata or Gommataraya, the chief minister and general of the ruler Rachamalla, the son of Narasimha, a great warrior and the head of the Ganga dynasty. It was king Rachamalla who raised the position of Chamundaraya, making him the chief minister and the head of the army. The statue is visible within a radius of 20 to 25 miles. Indeed, we are grateful to the general as well as the unknown talented sculptor who thought of giving to the world this wonderous piece of art, more than a thousand years ago.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

Boppana, a great Kannada poet of the 12th century AD has presented a graphic description of the statue as follows; "The Gommata statue at Shravanabelgola is unique and unparalleled as it crystallises the synthesis of the imposing height with grandeur and serenity. The childlike innocence of the face and the serene dignity of posture lead us to the heights of meditative spiritual excellence".

Another remarkable feature of the statue is that, according to tradition, it has stood for so long in meditation that creepers have twined round his motionless legs and fully grown ant-hills and dreadful serpents embrace the creeper. We are told that Gommata was so deeply engrossed in meditation that he stood in the same posture for a period of one year and was unaware that all the while ants had prepared a mound around his feet.

This has been a popular motif in Indian folktales. We come across a similar story of the sage, Chyavana, in the Mahabharata, who assumed the standing posture and stood quiet and still like a post for a long time till he turned into an ant-hill. The wellknown Father Elwin has also drawn our attention to such stories prevalent among aboriginal inhabitants.

However, the statue of Gommateshvara got so much popularity that, on the same pattern, statues were installed at different places; in 1432 AD at Karkal (South Canara district) 42 feet high, at Venur in 1604 AD 35 ft high ; at Kolhapur in 1963 28 ft high; Dharmasthala; Ferozabad (in Uttar Pradesh), Borivali (in Maharashtra) and many other places. Even the Shvetambaras could not neglect to pay homage to this remarkable statue. Muni Sheelvijya in his Tirthamala (1490 AD) refers to the annual annointing ceremony with 7,800 pitchers and the splendid chariot procession of the statue.

Huge preparations were made to celebrate the six-hour-long colourful finale of the great-head-annointing-ceremony of the monolith statue of Gommateshvara Bahubali when eight types of formulations were poured over the 57-foot high idol at Shravanabelgola in Hassan district of Karnataka. People from different parts of the the world-Jains

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

non-Jainas, Hindus, Muslims, Sikhs, Christians, tourists of all sorts, are congregated at Shravanbelgola to have a glimpse of Gommateshvara Bahubali, symbolised by a majestic statue. The ceremony culminated after 18 days of rituals and worship which began on Dec. 2

A unique feature of this Mahamastakabhisheka ceremony was to encourage the study of Prakrit language and literature which has been neglected so far. For this purpose, a Prakrit Research Institute is being planned by Shri Charukirti Bhattaraka Swamiji of the Jain Matt of Shravanabelgola. This Matt possesses 5,000 palm-leaf manuscripts in Prakrit and Kannada. Most of these manuscripts are still unpublished. They contain many important subjects dealing with astronomy, medicine, chemistry, metallurgy, testing of coins, testing of precious stones, traning of horses and elephants, evil influence of human eye, along with the works of narrative literature containing interesting tales and anecdotes.

This literature is secular in nature and is useful from the point of view of moral instructions and friendly advice for a common man. It is important for rewriting the cultural history of the Indian people which will help in correelating India's past heritage with the present.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

Late Pandit Sumerchand 'Diwakar'
A tribute

—Subodh Kumar Jain

A leader among Jain Pandits and a renowned scholar among modern scholars, who was not afraid of orthodox leaders and went to Japan, a foreign country for propagating Jainism. While maintaining fundamental values of life, Sumerchand Ji will go down in the history of Jain scholars as a really great man.

His contribution to Jain literature specially his work on Pujya Acharya Shri Shanti Sagarji Maharaj is remarkable for its authenticity and biographical details.

A soft spoken person, clad in Khadder and donning a Gandhi cap, he was a nationalist of Gandhian era.

His passing away will be very much mourned by all those who have met him and read his writing.

May his soul rest in peace.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

Padma Bhusan
Late Akshay Kumarji Jain
A tribute.

—Subodh Kumar Jain

A man of lofty mind, body and soul expired on the 25th Feb 1993, leaving a vaceuvm which looks very difficult to be filled.

I had the honour and pleasure to meet and talk to him several times. He impressed me largely by his affectionate talks and cooperative approach in all matters.

As chief editor of the Navbharat Times (Hindi) he will always be remembered by millions of readers of this news paper which attained its ever increasing readership due to his editorial columns as well as high standard & efficient managment As president and earlier, as working president of all India Digamber Jain Parishad he brought back the same dignity and high standard of leadership which the great founders of this institution, Barrister Champat Raiji Jain and Brahmchari Shital Prasad ji had infused to provide dignified opposition to fundamentalists in the older organisation— Bharatvarshiya Digamber Jain Mahasabha.

It was therefore not a surprise to see Rajarshee Dev Kumar Jain of Arrah, President of the Kundalpur session of the Mahasabha and later his well known son B. Nirmal Kumar Jain, presiding over the Lucknow session of the A. I. Digamber Jain Parishad, leaders of yester years knew how to maintain decorum while differing on values of far reaching importance.

Ac. Gunratnasuri MS

Jin Gun Aradhak Trust

As a political pandit he proved his acumen by pursuing the path of Anekantvad and Syadvad, as preached by lord Mahavir very explicitly and this justifies his long tenure as the chief editor of the Navbharat Times.

I offer my humble tribute to this great man, a wonderful leader and a great journalist and scholar of repute.

The goverment and the President of India conferred upon him 'Padm Bhushan' On many occasions advice was sought from him and many times he was invited to participate in T. V. net work for talks and discussions on crucial questions of national importance.

May his Soul rest in peace.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

Book—Review

—Subodh Kumar Jain

Name of the Book	—	Saman Suttan
Compiled by	—	Sri Jainendra Varni
Edited by	—	Dr. Sagarmal Jain
Translated by	—	Justice T. K. Tukol, Dr K. K. Dixit
Published by	—	Sarva Seva Sangh Prakashan Rajghat, Varanasi—221001 (U P) India
Price	—	Rs. 100/- only

This Religious Book of the Jains, which Vinobaji called—'The Jain-Geeta' has been ably compiled by another immortal saint, Sri Jinendra Varni.

I had the honour and priviledge to meet both Vinobaji and Varni ji and had the priviledge to talk to them

I had the honour to participate in a very small measure in the process of finalisation of the unique publication which was unanimously accepted and endorsed by saints, scholars and Sravakas of all the Jains, both Swetamberas and Digamberas, who were present in large number at Delhi on 29-30 November 1974. I was present there and it was really a great occasion.

The English translation has been very ably done and edited.

Well bound and well printed, this very useful Religious Book of all the Jainas has yet to he translated in all the major languages of India. Efforts are reported to be going on in this direction and positive results are awaited

The English verson, however needs to be distributed among world-scholars and ever growing Jain Community over-seas. In this respect the Indians overseas should enthusiastically co-operate with the publishers.

Sri Radha Krishna Bajaj of Sarva-Seva-Sangh deserves all praise for his efforts in the publication of this Book.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पचास वर्ष हो गये १६४३-१९६३

माननीय निर्मलकुमार जैन
(१९०१-१९५६)
अध्यक्ष बिहार चैम्बर ऑफ कॉमर्स (१९३५)
माननीय सदस्य-वाइसराय के
कौंसिल ऑफ स्टेट (१९३७)

बा० चक्रेश्वर कुमार जैन
(१९०६-१९६५)
अध्यक्ष बिहार चैम्बर ऑफ कॉमर्स
(१९३७-१९३९)
सदस्य, बिहार विधान सभा (१९३९)

भारतवर्ष में अल्यूमीनियम उद्योग का बीज आरोपित कर और फलीभूत किया, बिहार के दो भाइयों ने जिन्हें संकल्प था और हिम्मत थी उद्योग के अनजाने और दुर्गम क्षेत्र में प्रवेश करने की।

आज देश उनकी लगन और उत्साह का सुफल उठा रहा है। हम उन्हें गौरव पूर्वक याद करते हैं और उन्हें उनके अमूल्य उद्यम तथा देशभक्ति के लिए सादर सलाम करते हैं।

हम उनके अन्य सहयोगो सर्वश्री बी० जे० कुशा, सुमेर चन्द जैन और ईश्वरी दयाल को भी सलाम करते हैं।

उनकी स्मृति में

सत्येन्द्र नारायण सिंह	**विष्णु हरि डालमियाँ**	**शंकर दयाल सिंह**
भू० पू० मुख्यमन्त्री, बिहार	उद्योगपति	संसद सदस्य
विजय सिंह नाहर	**वी० पी० गुप्ता**	**योगेश्वर पाण्डेय**
भू० पू० उप मुख्यमन्त्री पश्चिम बंगाल	अध्यक्ष बिहार इन्डस्ट्रीज एसोसियेशन	अध्यक्ष, बिहार चैम्बर ऑफ कॉमर्स

कृष्ण नन्दन सहाय

भू० पू० अध्यक्ष, बिहार चैम्बर ऑफ कॉमर्स भू० पू० महापौर, पटना

और

प्रबोध कुमार जैन, सुबोध कुमार जैन, संतोष कुमार जैन, आमोद कुमार जैन, अतुल कुमार जैन, योगेन्द्र कुमार जैन, रतनेश कुमार जैन, उद्योत कुमार जैन, अरुणकुमार जैन, अचल कुमार जैन, सलिल कुमार जैन।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

नये प्रकाशन

जैन सिद्धान्त भवन ग्रन्थावली, भाग-१, २

(श्री जैन सिद्धान्त भवन, आरा के प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की विस्तृत सूची)

सम्पादक—डॉ० ऋषभचन्द्र फौजदार

प्रति भाग मूल्य—१३५/-

जैन रामायण

(मुनिकेशराज कृत सचित्र रामयशोरसायन रास)

जैन सिद्धान्त भवन, आरा की विशिष्ट पाण्डुलिपि का यथावत् प्रकाशन

सम्पादक—डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन

मूल्य : ८५०/-

श्री देवकुमार जैन ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट

आरा (बिहार)

Ac. Gunratnasuri MS
Jin Gun Aradhak Trust